खंड 3
मनोविज्ञान में भारतीय विचार

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 भारतीय और पाश्चात्य मनोविज्ञान में अंतर*

संरचना

7.1 उद्देश्य

7.2 परिचय

7.3 भारतीय मनोविज्ञान-अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र

7.3.1 अर्थ और प्रकृति

7.3.2 क्षेत्र

7.4 ऐतिहासिक स्रोत और विकास

7.4.1 भारतीय मनोविज्ञान के स्रोत

7.4.2 भारतीय मनोविज्ञान का विकास

7.5 भारतीय और पाश्चात्य मनोविज्ञान में अंतर

7.5.1 वैश्विक दृष्टिकोण में अंतर

7.5.2 भारतीय वैश्विक दृष्टि- दर्शन और धर्म

7.5.3 भारतीय और पाश्चात्य मनोविज्ञान में कुछ महत्त्वपूर्ण अंतर

7.5.3.1 मानव प्रकृति

7.5.3.2 जीवन और मरण

7.5.3.3 जीवन के लक्ष्य और मूल्य - पुरुषार्थ

7.5.3.4 चेतना और चेतना की अवस्थाएं

7.5.3.5 चेतना, मन और मानसिक क्रियाशीलता

7.6 योग, ध्यान और अन्य स्वदेशी पद्धतियों का महत्व

7.6.1 मनोविज्ञान के क्षेत्र में समकालीन विकास

7.7 सारांश

7.8 प्रमुख शब्द

7.9 स्व आकलन प्रश्नों के उत्तर

7.10 इकाई के अंत में प्रश्न

7.11 संदर्भ

7.12 अनुशंसित अध्ययन

7.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित में सक्षम होंगे :

- भारतीय मनोविज्ञान के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की व्याख्या करना;
- भारतीय मनोविज्ञान के अर्थ और क्षेत्र का वर्णन;
- वैश्विक संदर्भ में भारतीय मनोविज्ञान की समकालीन प्रासंगिकता को समझना;
- भारतीय और पाश्चात्य मनोविज्ञानों में मौलिक अंतर का वर्णन करना; और
- योग, ध्यान एवं अन्य स्वदेशी पद्धतियों का महत्व समझना।

*प्रो. किरण कुमार के. सालागामे, पूर्व प्रोफेसर, मनोविज्ञान, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर, कर्नाटक

7.2 परिचय

भारतीय मनोविज्ञान देश की तीन मुख्य परम्पराओं अर्थात् हिन्दुत्व, जैन धर्म और बौद्ध धर्म में अंतर्निहित चेतना, मन और व्यवहार के बारे में ज्ञान का समृद्ध निकाय है, जो हमें अपने प्राचीन चिंतकों से विरासत में मिला है। चूंकि चेतना की प्रकृति, स्व और मानसिक गतिविधियों से जुड़ी अधिकतर सामग्री इन्हीं परम्पराओं में दी जाने वाली धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा व अनुष्ठानों के एक हिस्से के रूप में पनपी और विकसित हुई है, इसलिए वे या तो धार्मिक समझ ली जाती हैं या दार्शनिक। भारत में उन विषयों की चर्चा प्रायः धार्मिक प्रवचनों और दार्शनिक बहसों में की जाती है। लेकिन उनका मनोवैज्ञानिक आशय और महत्त्व, दोनों ही सामान्य लोगों, विद्वानों और पेशेवरों के लिए अस्पष्ट रहा है। हमारी परम्पराएं सोने की खदानों की तरह हैं। सोना हरेक गड्ढे में है। लेकिन हमें इसे अशुद्धियों से अलग कर इसे परिष्कृत करना है।

बिल्कुल उसी तरह से, हमें मानव स्वभाव और व्यवहार को बेहतर तरीके से समझने के लिए चेतना की प्रकृति और मन को बेहतर परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए हमें भारतीय परम्परागत स्रोतों की समीक्षा करनी है। भारतीय मनोविज्ञान केवल भारतीयों तक सीमित नहीं है बल्कि यह सारी मानवता के लिए है।

7.3 भारतीय मनोविज्ञान-अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र

अब हम भारतीय मनोविज्ञान का अर्थ समझेगें और उसकी प्रकृति पर विचार करेंगे।

7.3.1 अर्थ और प्रकृति

समकालीन साहित्य में 'भारतीय मनोविज्ञान' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। भारतीय मनोविज्ञान से सम्बन्धित अगर कुछ आलेखों या किताबों को पढ़ें तो आप पाएंगे कि विभिन्न लेखकों ने इस शब्द का प्रयोग थोड़े भिन्न-भिन्न रूपों में किया है। उन्होंने विभिन्न आयामों पर बल दिया है। कुछ लेखक 'आध्यात्मिक दृष्टिकोण' को उजागर करते हैं तो अन्य 'सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण' पर बल देते हैं। जब आगे चल कर आधुनिक मनोविज्ञान में पश्चिमी और गैर-पश्चिमी/एशियाई मनोविज्ञान का स्वतः अंतर प्रकट हुआ तो कुछ विद्वानों ने मनोविज्ञान के 'भारतीयकरण' की पैरोकारी की तो अन्यों ने 'देशज' मनोविज्ञान के विकास की वकालत की। इस तरह, हम पाते हैं कि 'देशज', 'भारतीयकरण' और 'भारतीय' मनोविज्ञान शब्द का उपयोग कभी-कभी अदल-बदल कर होता रहा है, जिससे उलझन होती है। अतः इन शब्दों के अर्थ और कैसे ये एक दूसरे से भिन्न है, यह समझने की आवश्यकता है। भारतीय मनोविज्ञान को समझने के लिए सालागामे द्वारा सुझाये पांच तरीकों को आप नीचे देख सकते हैं (सालागामे, 2001; 2011)।

a) भारत में मनोविज्ञान - अनेक लेखकों, जो पेशेवर मनोवैज्ञानिक नहीं हैं, जैसे कि पर्यटक, अन्य संकायों के अध्येयता और कुछेक विदेशी मनोवैज्ञानिक, ने भारतीय मनोविज्ञान शब्द का उपयोग *भारत में अकादमिक और पेशेवर स्तर पर मनोविज्ञान की स्थिति* स्पष्ट करने के लिए एक सामान्य अर्थ में किया है। नीचे सूचीबद्ध अन्य प्रयोगों को भी इसमें शामिल किया जा सकता है।

b) भारतीय मनोवैज्ञानिक विचार - यह वह प्राथमिक अवधारणा है, जिसमें इस शब्द का उपयोग एक शताब्दी से ज्यादा समय से हो रहा है। इसका आशय *मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि* से है, जो वैदिक, जैनियों और बौद्ध परम्पराओं से संबंधित चिंतकों के रचे

उनके विद्वतापूर्ण साहित्य में उपलब्ध हैं, जो हमारे देश के लिए *चिर पुरातन* और *देशज* हैं। कई लोग उनको विकसित करने में पूरी सक्रियता से लगे हुए हैं। इन लोगों में भारतीय और विदेशी दोनों हैं।

c) **भारतीय पहचान के साथ मनोविज्ञान** - कुछ लोगों द्वारा *वैदिक मनोविज्ञान, बौद्ध मनोविज्ञान, योग मनोविज्ञान, हिन्दू मनोविज्ञान, जैन मनोविज्ञान* और *द्रविड़ीय मनोविज्ञान* शब्द का उपयोग किया जाता है। ये सभी *भारतीय विचार-परम्पराओं* के हिस्सा हैं और *भारतीयता* को परिलक्षित करते हैं। हालांकि हम पाते हैं कि पूरी दुनिया के लोगों का इसमें योगदान रहा है।

d) **एक भारतीय चिंतक के दर्शन के आधार पर विकसित मनोविज्ञान** - आधुनिक मनोविज्ञान यद्यपि अनेक वैज्ञानिकों के सामूहिक कार्य का सुपरिणाम है, बहुधा हम ऐसी विभिन्न विचारधाराओं से मिलते हैं, जिसकी बुनियाद एक व्यक्ति विशेष के दार्शनिक दृष्टिकोण पर रखी गई है। भारत में, समकालीन उदाहरण *एकात्म मनोविज्ञान* (integral psychology) का है, जो महर्षि अरोबिन्दो के एकात्म दृष्टिकोण से प्रेरित था। हम यह पाते हैं कि श्री अरोबिन्दो की दृष्टि और शिक्षण का अनुगमन करने वाले भारतीय और विदेशी दोनों ही अनुयायी एकात्मक मनोविज्ञान के विकास में अपना योगदान दे रहे हैं।

e) **भारतीय लोगों का मनोविज्ञान** - वे लोग जो सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण का अनुसरण करते हैं, प्राथमिक रूप से *भारतीय जन के व्यवहारों को समझने* पर जोर देते हैं। वे भारतीय स्वदेशी अवधारणा और सिद्धांत के प्रति विशेष आग्रही नहीं हैं। वे पश्चिमी विचारों और विधियों का भी इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए एरिक इरिक्सन से मनोविश्लेषण का प्रशिक्षण प्राप्त भारतीय मूल के मनोवैज्ञानिक सुधीर कक्कड़ ने भारतीय मनोविज्ञान को समझने के लिए मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत का उपयोग किया है और अपनी किताबें और आलेख प्रकाशित किये हैं।

लेकिन भारतीय लोगों के व्यवहारों को समझने के लिए भारतीय अंतर्दृष्टि और अवधारणा का उपयोग करने के भी कुछेक प्रयास हुए है। उदाहरण के लिए मनोचिकित्सक प्रो. नेकी पाते हैं कि भारतीय क्लाइंट और मरीजों के साथ 'गुरु-चेला' जैसा सम्बन्ध मनोचिकित्सा के क्षेत्र में बेहतर काम करता है। संगठनात्मक व्यवहार के एक विशेषज्ञ प्रो. जे.बी.पी सिन्हा ने एक शब्द गढ़ा है 'नेतृत्व का प्रतिपालक पाठ' (nurturant task leadership)। उनका सुझाव है कि वरिष्ठ भारतीय कर्मचारी जो अपने संस्थान में नेतृत्व देने की स्थिति में हैं, वह अपने अधीनस्थों के प्रति प्रतिपालक रुख के साथ बेहतर कार्य-परिणाम पा सकते हैं। ये दोनों उदाहरण बताते हैं कि हम भारतीय अपने से बड़ों के प्रति कुछ आश्रितता या निर्भरता का भाव रखते हैं।

चूंकि भारतीय मनोविज्ञान ऐसे भिन्न रूपों में उपयोग किया जाता है, इसलिए यह आवश्यक है कि हम खास लेखक और शोधकर्ता के अभिविन्यास के बारे में जान लें, जिनके आलेख या किताबें हम पढ़ते हैं।

इसके अलावा, यह भी याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि अब भी भारत की बहुत बड़ी आबादी अपने को वैदिक या जैन या बौद्ध परम्पराओं से जोड़ कर देखती है। उनमें समाहित उनके मूल्यों, विश्वासों, रीति-रिवाजों और व्यवहारों के मुताबिक अनेक सदियों से अपना जीवन जीती रही है। इस प्रकार, भारतीय मनोविज्ञान का अर्थ जैसा कि ऊपर के दूसरे और पांचवें बिंदु में दिया गया है, वह घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। उपरोक्त तीनों परम्पराओं ने उनके बहुत

बाद भारत में विकसित हुई अन्य धार्मिक पद्धतियों को प्रभावित किया है। साथ ही, भारत में आने वाली मिषनरी और आक्रमणकारियों के धर्म पर भी अपना प्रभाव छोड़ा है।

पाठ के इस अंश को और स्पष्ट तरीके से समझने के लिए हम देखें कि भारतीय मनोविज्ञान क्या 'नहीं' है।

- भारतीय मनोविज्ञान भारत में रहने वाले किसी खास समूह या जाति का दशेज मनोविज्ञान नहीं है।
- यह मनोविज्ञान का स्वदेशीकरण नहीं है, जिसका अभिप्राय पश्चिमी मनोविज्ञान के सिद्धांत और प्रतिरूपों (मॉडल्स) को भारतीय संदर्भ में अनुकूल बनाना है।
- यह भारत की भौगोलिक सीमा में रहने वाले लोगों तक ही सीमित नहीं है।
- हालांकि यह भारत के जन समुदायों के व्यवहारों को समझने में मदद करता है, फिर भी यह भारतीय लोगों का मनोविज्ञान नहीं है।

भारतीय शब्द तो केवल देश के प्राचीन ग्रंथों और प्रबंधों के संदर्भ में व्यक्ति की चेतना और उसके मन की प्रकृति पर विचार करने और उनकी विवेचना करने की अद्वितीय और विशिष्ट अंतर्दृष्टि को रेखांकित करता है। यह मानव जीवन और व्यवहार के अन्य आयामों पर भारतीय परिप्रेक्ष्य के बारे में बताता है। लेकिन ये सभी सार्वभौम रूप से लागू होते हैं। इस मायने में, यह मौजूदा वैज्ञानिक मनोविज्ञान का ही विस्तार है।

मनोविज्ञान का स्वदेशीकरण

स्वदेशी मनोविज्ञान के विपरीत, मनोविज्ञान का स्वदेशीकरण स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में आधुनिक मनोविज्ञान की बुनियादी अवधारणाओं, सिद्धांतों, प्रतिरूपों और उपायों के प्रतिपादन का आह्वान करता है। इसमें सार्वभौमिक नियम-कायदों और सिद्धांतों की विकसित होती भावना को स्वीकार किया जाता है। विकासशील स्वदेशी मनोविज्ञान में 'संस्कृति विचारों का स्रोत' होती है। जबकि मनोविज्ञान के भारतीयकरण में 'संस्कृति एक लक्ष्य' होती है (सिन्हा, डी, 1984)। वे लोग जो स्वदेशीकरण की वकालत करते हैं, वे वैज्ञानिक मनोविज्ञान के उस विचार को मजबूती से पकड़े हुए हैं, जिसका लक्ष्य वैश्विक नियम और सिद्धांत है। उदाहरण के लिए कमला चौधरी ने भारतीय समाज के संदर्भ में चित्रों को बदल कर थीमैटिक एपर्सेप्शन टेस्ट (टीएटी) का अनुकूलन किया। इसी तरह, बिनेट-कामत का बुद्धि परीक्षण दूसरा ऐसा उदाहरण है, जहां भारतीय ढांचे से सामंजस्य स्थापित करने के लिए परीक्षण आइटम को उसके मूल रूप से बदला गया है। इन दोनों अनुकूलन में, प्रोजेक्टिव मनोविज्ञान और आईक्यू परीक्षण के बुनियादी विचार अपरिवर्तित रहते हैं। इसी तरह, जे.बी.पी सिन्हा ने नेतृत्व का नया विचार प्रस्तुत किया, जो भारतीय कार्य-संस्कृति के लिए अधिक अनुकूल है और उन्होंने एक शब्द गढ़ा है 'प्रतिपालक नेतृत्व' (nurturant task leadership)। अभी तक, भारत में शुरुआत से ही कई मनोवैज्ञानिकों ने स्वदेशी मनोविज्ञान का विकास करने के बजाय मनोविज्ञान का भारतीयकरण किया है।

भारतीय मनोविज्ञान

स्वामी विवेकानंद, श्री अरबिंदो, यदुनाथ सिन्हा, और अन्य विद्वानों के भारतीय मनोविज्ञान के प्रारम्भिक लेखन की प्रेरणा राष्ट्रवादी थी। वे भारतीय संस्कृति और परम्पराओं की अद्वितीयता को उभारना चाहते थे। वे भारतीय परिप्रेक्ष्य पर बल देना चाहते थे। आधुनिक वैज्ञानिक विकास एवं भौतिकवादी वैश्विक दृष्टिकोण के संदर्भ में, वे भारत के वैश्विक आध्यात्मिक दृष्टिकोण की महत्ता को उजागर करना चाहते थे। उनका जोर यह बताने पर था कि हमारे

प्राचीन चिंतकों ने किस प्रकार चेतना की प्रकृति, मन, स्व और अन्य सम्बन्धित विषयों को समझा था; और वे किस तरह पश्चिमी मनोविज्ञान से भिन्न हैं। इसलिए, अपने शास्त्रों से प्रेरणा और विचारों को लेते हुए भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भारतीय मनोविज्ञान को विकसित करने का उनका यह प्रयास कुछ समय तक जारी रहा। लेकिन पश्चिमी अनुभवजन्य (empirical) परम्पराओं में दीक्षित हुए प्रारम्भिक मनोवेत्ताओं ने ऐसे प्रयासों को अंधविश्वास की तरफ ले जाने वाला प्रतिगामी कदम मानते हुए उनका प्रतिरोध किया (सिन्हा, डी; 1984; दलाल, 2002)।

फिर भी, चेतना के अध्ययनों में विकास तथा उत्तर-वैयक्तिक मनोविज्ञान (transpersonal psychology) के उद्‌भव के कारण एवं संस्कृति आधारित मनोविज्ञानों पर जोर देने के कारण, पिछले पांच दशकों के दौरान भारत में मनोवैज्ञानिकों ने कई दृष्टिकोणों को अपनाया है। जिससे भारतीय मनोविज्ञान के बारे में विविध विचार उभरे हैं। अतः उन भिन्न विचारों और दृष्टिकोणों को स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

7.3.2 क्षेत्र

भारतीय मनोविज्ञान का क्षेत्र केवल आध्यात्मिकता और धर्म तक ही सीमित नहीं है। हमारे चिंतकों ने मानव व्यवहारों के किसी भी पक्ष को नहीं छोड़ा है। उन्होंने मानव व्यवहारों के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। हम विकासात्मक आयाम (शोड्‌ष 'shodasha' संस्कार) के बारे में, असामान्य व्यवहारों (आयुर्वेद में) के बारे में, यौनिकता और यौन व्यवहारों (कामसूत्र में), आर्थिक और राजनीतिक क्रियाओं (अर्थशास्त्र और चाणक्य नीति में), समाज मनोविज्ञान के बारे में (धर्मशास्त्र और नीति शास्त्र में) आदि के बारे में सूचनाएं पाते हैं। इसी प्रकार, हम संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के बारे में शट् दर्शन (भारतीय दर्शन की छह पद्धतियां) और जैन एवं बौद्ध दर्शन में ज्ञान पाते हैं। भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने आधुनिक मनोविज्ञान में विवेचित मानव व्यवहार का जैव-मनो-सामाजिक संदर्भ और आध्यात्मिक आयामों को भी अपने अध्ययनों में शामिल किया है। इस प्रकार, भारतीय मनोविज्ञान का क्षेत्र 'यौनिकता से लेकर आध्यात्मिकता' तक विस्तृत है (सालागमे, 2013)

स्व आकलन प्रश्न 1

1) इससे आपका क्या अभिप्राय है कि मनोविज्ञान एक भारतीय चिंतक के दर्शन के आधार पर विकसित हुआ है?

.....

.....

.....

.....

2) अर्थशास्त्र और चाणक्य नीति क्या कहती है, उनकी विवेचना करें।

.....

.....

.....

.....

3) 'प्रतिपालक नेतृत्व' का सिद्धांत किसने दिया है?

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 ऐतिहासिक स्रोत और विकास

वैसे भारतीय मनोविज्ञान का लगभग एक शताब्दी का संक्षिप्त इतिहास है, लेकिन उसका सुदीर्घ अतीत है। इसकी जड़ें पुरातनता में हैं, जिसकी अवधि लगभग 10,000 ईसा पूर्व है, जब वेदों का पहला ग्रंथ मिलता है। हमारे परम्परागत विश्वास और विद्वतापूर्ण मत के अनुसार सभी शाखाओं में ज्ञान के सर्वथा प्रारम्भिक स्रोत वेद डी है। मनोविज्ञान, आधुनिक अर्थ में, ज्ञान की स्वतंत्र शाखा के रूप में हमारे देश में कभी नहीं रहा है। यह प्राचीन गुरुकुल या नालंदा और तक्षषिला जैसे विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाने वाला 'शास्त्र' नहीं था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि भारतीय चिंतक उन विषयों और विषय-वस्तु से अनभिज्ञ थे, जिनका अध्ययन हम आधुनिक मनोविज्ञान में करते हैं।

7.4.1 भारतीय मनोविज्ञान के स्रोत

एस. के. रामचंद्र राव ने अपनी उत्कृश्ट किताब 'डवलपमेंट ऑफ साइकोलॉजी थॉट्स इन इंडिया' (1962) में लिखा है कि यद्यपि प्राचीन भारत में ज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा के रूप में मन का अध्ययन नहीं होता था, किंतु ढेर सारा 'मनोविज्ञानीकरण' था। भारतीय चिंतक आवश्यकता अनुसार मानव व्यवहार के लगभग सारे पहलुओं का अध्ययन भिन्न-भिन्न संदर्भों में किये हैं। वे वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, योगसूत्रों, धर्मशास्त्रों और नाट्यशास्त्रों आदि में मन की प्रकृति और कार्य पर विचार किये हैं और इसे चेतनाओं से अलग कर चर्चा किये हैं। जैन और बौद्ध धर्म के ग्रंथों और संहिताओं में भी चेतना की प्रकृति और मन के बारे में विस्तार से विचार किया गया है। अन्य विशिष्ट विषयों जैसे ज्योतिषशास्त्र, अर्थशास्त्र, नाट्य शास्त्र और धर्मशास्त्र में भी मनोवैज्ञानिक महत्त्व के अनेक प्रकरणों पर विचार किए गए हैं।

इस प्रकार, विभिन्न विधाओं और संदर्भों-जैसे ज्योतिष, अर्थशास्त्र, शासन-कौशल, नृत्य, नाटक, संगीत एवं नैतिक, कानूनी तथा सामाजिक नैतिकता-में भिन्न उद्देश्यों के साथ विचार किया गया है। कई प्राचीन ग्रंथ भिन्न-भिन्न भाषाओं-वैदिक संस्कृत, उत्तर-संस्कृत, पाली, प्राकृत और अर्ध मागधी-में भी हैं। इस प्रकार, विभिन्न साहित्यों में फैले सभी विचारों को एक साथ समाहित कर पाना विशाल कार्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में किसी को ऐसा करना आवश्यक नहीं लगा। आगे चलकर यह साहित्य, दर्शनशास्त्र (भारतीय दर्शन पद्वतियां) के युग और फिर मध्य काल एवं आधुनिक समय में विद्वता और संख्या में अपरिमेय और व्यापक होता गया। किसी भी अकेले व्यक्ति के लिए इन विभिन्न काल खंडों में रचे गए विपुल ग्रंथों में बिखरे विचारों को एक जगह गूंथ पाना दुष्कर कार्य था। इस काम को आधुनिक काल तक किसी ने भी अपने हाथ में नहीं लिया था। 20वीं सदी तक हम एक भी ऐसी जगह नहीं पाते जहां सभी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और अवधारणाएं प्रकट या विकसित हुए हों।

कुछ आधुनिक लेखक पंतजलि के 'योगसूत्र' को भारतीय मनोविज्ञान का शास्त्रीय ग्रंथ मानने का सुझाव देते हैं। निःसंदेह में, यह मन की प्रकृति और कार्यों एवं चेतना के विभिन्न स्तरों, समाधि आदि के बारे में विचार करता है। जैसा कि स्वामी विवेकानंद ने लिखा है, 'पतंजलि ने अपने जीवनकाल में मौजूद योग-उसके सिद्धांत और व्यवहार-के बारे में प्रचलित सभी विचारों को एक जगह लाने का काम किया है और उन लोगों की मदद के लिए अपना शास्त्र लिखा है, जो मन और चेतना की सभी अवस्थाओं के पार जाना चाहते हैं, जिसे *कैवल्य* कहते हैं।' उन्होंने इसे ''व्यावहारिक मनोविज्ञान'' (practical psychology) कहा है। (विवेकानन्द, 2003)।

लेकिन पतंजलि के कार्य का लक्ष्य मन और चेतना की अवस्थाओं का उस तरह विस्तार से अध्ययन करना नहीं है, जैसा कि हम आधुनिक मनोविज्ञान में अपनी रोजमर्रा की समझ और अनुप्रयोग में करते हैं। इसका उद्देश्य एक व्यक्ति को साक्ष्य भाव से उसकी यथार्थ प्रकृति और पहचान को अनुभूत कराना है। यह आत्म-बोध (self-realization) की नियमावली है। इसलिए इसे 'मनः शास्त्र' का एक ग्रंथ नहीं माना जा सकता (सालागमे, 2008)। यह आधुनिक मनोविज्ञान पर परिचयात्मक पाठ के समान भारतीय मनोविज्ञान पर परिचयात्मक पाठ नहीं है, जिसे आपने पहले सत्र में पढ़ा है।

7.4.2 भारतीय मनोविज्ञान का विकास

1906 में कोलकत्ता विश्वविद्यालय में पश्चिमी मनोविज्ञान की शुरूआत हुई थी। हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि पश्चिमी मनोविज्ञान के समकक्ष संस्कृत/हिन्दी में 'मनःशास्त्र' शब्द गढ़ा गया था। कुछ लोगों ने 'भारतीय मनःशास्त्र' जैसे शब्द का भी उपयोग किया था। अन्यथा, हमारी समझ से, इस क्षेत्र में हमारे यहां अध्ययन का कोई संदर्भ नहीं मिलता है। अनेक विद्वान ने 20वीं सदी के प्रारम्भ से भारतीय मनोविज्ञान शब्द का उपयोग करते रहे थे। अभी तक प्रमाण के साथ यह निश्चित नहीं है कि किस विद्वान ने पहली बार कब और कहां इस शब्द का उपयोग किया था। लेकिन हम पाते हैं कि इस शब्द का पहली बार स्पष्ट रूप से स्वामी विवेकानन्द ने 1900 में संयुक्त राज्य अमेरिका में दिये अपने भाषणों में उल्लेख किया। उन्होंने वहां अपने भाषणों में श्रोताओं का ध्यान 'भारतीय मनोविज्ञान' और 'पश्चिमी मनोविज्ञान' में अंतर की तरफ खींचा था (विवेकानन्द, 2003)। तदनन्तर, इस शब्द का उपयोग महर्षि श्री अरबिन्दो ने शिक्षा पर लिखे अपने आलेखों (अरबिन्दो, 1910) में किया है।

20वीं सदी के पूर्वार्ध में, अन्य पश्चिमी और भारतीय विद्वानों ने 'बौद्ध मनोविज्ञान' (राइस डेविडस, 1914, 1936), 'हिन्दू मनोविज्ञान' (अखिलेष नन्दा, 1948, 1952) और जैन मनोविज्ञान (मेहता, 1957) शीषर्क से किताबें लिखी थीं, जिनमें हमारे देश में इन परम्पराओं में पहले से मौजूद मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टियों को उभारा था।

हालाँकि विभिन्न स्रोतों में बिखरे व्यापक दृष्टिकोणों को एकत्र करने और उन्हें एक साथ लाने के महत्ती काम का श्रेय जदुनाथ सिन्हा को जाता है। वह 1933 और 1969 के दौरान कलकता में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे। उन्होंने तीन खंडों में 'इंडियन साइकॉलोजी-कॉगनिशन' (भारतीय मनोविज्ञान - अनुभूति), 'इंडियन साइकॉलोजी-इमोशन एंड विल' (भारतीय मनोविज्ञान- भावना एवं इच्छा); और 'इंडियन साइकॉलोजी-इपिस्टमालजी ऑफ पर्सेप्शन' (भारतीय मनोविज्ञान-प्रत्यक्षण की ज्ञान मीमांसा) (सिन्हा, जे.एन. 1958, 1961, 1968) शीर्षक से मनोविज्ञान पर किताबें लिखीं, जिनमें उन्होंने महत्त्व के प्रायः सभी विषयों और साथ ही, उन विषयों भी शामिल किया, जिनके बारे में आधुनिक मनोविज्ञान की किताबों में आम तौर पर कोई चर्चा नहीं होती थी। तदनन्तर, अन्य कई विद्वानों और मनोवैज्ञानिकों

ने भारतीय मनोविज्ञान के बारे में किताबें लिखीं, जिसमें रघुनाथ सफाया की किताब 'इंडियन साइकॉलोजी : क्रिटिकल एंड हिस्टोरिकल एनालिसिस ऑफ साइकोलॉजिकल स्पेकुलेशन इन इंडियन फिलॉसफिकल लिट्रेचर' संक्षिप्त रूप में व्यापक विचार प्रदान करती है।

भारतीय मनोविज्ञान को विकसित करने के प्रयासों को अंधविश्वास की तरफ वापसी के 'प्रतिगामी' अभियान के रूप में देखा गया (सिन्हा, डी. 1984)। यद्यपि 1960, 1970 और 1980 के दशकों के बीच कुछेक विश्वविद्यालयों ने भारतीय मनोविज्ञान पर थोड़े समय के लिए पाठ्यक्रम चलाए थे, लेकिन उन पाठ्यक्रमों के वैज्ञानिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से साम्य न होने के कारण उनकी पढ़ाई को कुछ समय के लिए बंद किया गया था। आंध्र विश्वविद्यालय, कुछ दशकों तक एक जर्नल (Journal of Indian Psychology) प्रकाशित कर रहा था (दलाल, 2002)। लेकिन इनमें से कोई भी जारी नहीं रह सका और इस तरह, स्नातक, स्नातकोत्तर और शोध के स्तरों पर भारतीय मनोविज्ञान को शुरू कराने में ज्यादा प्रगति नहीं हुई।

हालांकि वर्ष 2001 के बाद भारतीय मनोविज्ञान के विकास में, कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, सेमिनारों, और पूरे देश में कार्यशालाएं आयोजित किये जाने के रूप में एक अप्रत्याषित उछाल देखने को मिलता है। शोधपरक आलेख और किताबों के प्रकाशनों की संख्या में वृद्धि हुई है। कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों में 'ए सिस्टेमेटिक सर्वे ऑफ इंडियन साइकॉलोजी' (श्रीवास्तव, 2001); 'पर्सपोक्टिव्स ऑन इंडिजनिएस साइकॉलोजी' (मिश्रा एवं मोहंती, 2002); 'हैंडबुक ऑफ इंडियन साइकोलॉजी' (राव, परांजपे एंड दलाल, 2008), 'फाउंडेशनस ऑफ इंडियन साइकोलॉजी', खंड-1 और खंड-2 (कॉर्नेलिसन, मिश्रा एंड वर्मा, 2011a, 2011b); 'साइकोलॉजी इन इंडियन ट्रेडिषन' (राव एवं पराजंपे, 2016) शामिल हैं।

इन प्रकाशनों में भारतीय और विदेशी मनोवैज्ञानिकों एवं अन्य विद्वानों, शोधकर्ताओं और आयुर्वेद, संस्कृत, मानविकी एवं समाज विज्ञानों, संगठनात्मक विकास एवं मानव संसाधन विकास प्रबंधन के पेशेवरों का योगदान शामिल है।

पुडुचेरी में 2002 में एक सम्मेलन आयोजित हुआ था, इसमें शामिल 160 प्रतिभागियों ने भारतीय मनोविज्ञान को विकसित और बढ़ावा देने के लिए एक घोषणापत्र के जरिये देश के मनोवैज्ञानिकों से आह्वान किया था। इस सम्मेलन का आयोजन नीदरलैंड के निवासी मैथिज्स कॉर्नेलिसन ने श्री अरबिन्दो इंटरनेशनल सेंटर के तत्वावधान में किया था, जो पुडुचेरी में ही रह कर महर्षि अरबिन्दो की शिक्षा का अनुसरण करते रहे हैं। उन्होंने कुछ साल पहले 'Indian psychology Institute' (www.ipi.org) की आधारषिला भी रखी है, जिसमें मनोविज्ञान की पढ़ाई की जाती है और शोध कार्य किये जाते हैं। इसके बाद देश के कुछ संकायों में भारतीय मनोविज्ञान की पढ़ाई शुरू हो गई है। मनोविज्ञान के पाठ्यक्रमों की समीक्षा करने और मॉडल पाठ्यक्रम को अद्यतन बनाने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा हाल ही में गठित विशेषज्ञों की एक समिति ने महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रमों में भारतीय मनोविज्ञान के कुछ नये विषय जोड़े हैं।

स्व आकलन प्रश्न 2

1) एस.के. रामचंद्र राव की लिखी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का नाम क्या है?

.....

.....

.....

2) भारतीय मनोविज्ञान के कुछ स्रोतों के नाम बताएं?

.....

.....

.....

.....

.....

3. दर्शन क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7.5 भारतीय और पश्चिमी मनोविज्ञान में अंतर

दोनों मनोविज्ञानों के बीच का भेद का मतलब केवल इसकी पहचान करना नहीं है कि भारतीय और पश्चिमी मनोविज्ञान किस प्रकार मानव व्यवहार के इस या उस पक्ष पर अंतर रखते हैं। यह भारतीयों को अंतर्मुखी या सामूहिकवादी, या उपलब्धि आवश्यकताओं में कम और निर्भरता आवश्यकताओं में ज्यादा, यह बताने की बात भी नहीं हैं। ऐसे मूल तथा सतही विज्ञेशकों का पता करना अंतर-सांस्कृतिक शोध का पिछले कई दशकों से फोकस रहा है। ऐसे अंतर केवल भारत में ही नहीं, अन्य संस्कृतियों के लोगों में भी पाया जाता है।

7.5.1 वैश्विक दृष्टिकोण में अंतर

अधिक महत्त्वपूर्ण अंतर तो दार्शनिक महत्त्व के बुनियादी मसलों या भारतीय एवं पश्चिमी मनोविज्ञान में अंतर्निहित ''वैश्विक दृष्टिकोणों'' (world views) को लेकर है। कोल्टको-रिवेरा (2004, पृष्ठ-4) ने वैश्विक दृष्टिकोण को ब्रह्मांड और उसमें रहने वाले जीवन को क्या है और क्या हो सकता है, इन दोनों ही रूपों में विश्लेषण के रूप में परिभाषित किया है। वास्तविकता की प्रकृति से जुड़ा मान्यताएं और विश्वास सामाजिक और सांस्कृतिक वैश्विक दृष्टिकोणों से सम्बन्धित है। कोल्टको-रिवेरा (2004, पेज-4) यह बताते हैं कि वैश्विक दृष्टिकोण को कई नामों से कहा गया है जैसे कि 'फिलॉसफी ऑफ लाइफ' (जुंग 1942/1954), 'वर्ल्ड हाइपोथीसिस' (पीपर, 1942/1970), 'वर्ल्ड आउटलुक' (माश्लोव, 1970अ, पेज-39), 'एसम्प्टिव वर्ल्ड' (फ्रैंक, 1973), 'विजन ऑफ रिअल्टी' (मेसर, 1992, 2000), सेल्फ एंड वर्ल्ड कंस्ट्रक्ट सिस्टम, (कोटलर एंड हेजलर, 2001), पेज-361)। अकेले मानव-शास्त्र/नृ-विज्ञान में ही वैश्विक दृष्टिकोण को ''सांस्कृतिक अभिविन्यास'' (क्लुकोहन,1950), ''गुण अभिविन्यास'', ''अर्थ की अचेतन पद्धति'', ''पसंद का अचेतन सिद्धांत'', ''विन्यास'', ''सांस्कृतिक थीम'' और ''मुख्य संस्कृति'' (क्लुकोहन, और स्ट्रोडबेक, 1961,/1973, पेज, 1-2) के रूप में प्रतिपादित किया जाता है।

कोल्टको-रिवेरा ने वैश्विक दृष्टिकोण की तीन मुख्य विशेषताओं को सूचीबद्ध किया है, जो निम्नलिखित हैं.

1) एक प्रदत्त वैश्विक दृष्टिकोण *मान्यताओं का एक समूह* (a set of beliefs) है, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं-

   अ) अस्तित्व और अन-अस्तित्व के बारे में वक्तव्यों और मान्यताओं को सीमित करना (या तो वास्तविकता में अथवा सैद्धांतिक रूप में)।

   ब) कौन सी वस्तुएं या अनुभव अच्छे हैं या बुरे हैं, और कौन से उद्देश्य, व्यवहार और सम्बन्ध वांछनीय हैं अथवा अवांछनीय हैं।

2.) वैश्विक दृष्टिकोण निम्नलिखित **परिभाषित** (define) करता है-

   अ) दुनिया में क्या जाना जा सकता है या क्या किया जा सकता है, और

   ब) इसे किस तरह पहचाना जा सकता है और किया जा सकता है?

   स) जीवन में किन लक्ष्यों की तलाश की जा सकती है,

   द) किन लक्ष्यों को साधना चाहिए।

3) वैश्विक दृष्टिकोण में ऐसी **मान्यताएं** (assumptions) समाहित हैं

   अ) जो अप्रमाणित हो और यहां तक की जो प्रमाणित न हो सके,

   ब) लेकिन ये मान्यताएं परम उच्चकोटि (superordinate) की हो सकती हैं,

   स) वे एक विश्वास प्रणाली के दायरे में अन्य विश्वासों के लिए ज्ञानात्मक और सत्ता मीमांसा सम्बन्धी नींव प्रदान करती हैं।

इसके साथ, कोल्टको-रिवेरा (2004) कहते हैं कि ''जीवन और वास्तविकता के बारे में विश्वासों और मान्यताओं का समूह'' ''मानव संज्ञान और व्यवहार को प्रबलतापूर्वक प्रभावित'' कर सकता है। इसका व्यक्तिगत स्तर पर या सामूहिक स्तर पर ''व्यक्तित्व के सिद्धांत, संज्ञान, शिक्षा और हस्तक्षेप'' के लिए निहितार्थ हैं। वे संस्कृति और द्वंद्व, विश्वास और डटकर मुकाबला करना, युद्ध और शांति का मनोविज्ञान सिद्धांत के लिए एक आधार प्रदान कर सकते हैं।'' (पृष्ठ 1)

इस मान्यता ने पूरे विश्व के कई मनोवैज्ञानिकों को सतर्क कर दिया कि पश्चिमी समाजों में प्रचलित वैश्विक दृष्टिकोण जो की भौतिकवादी है, यह आधुनिक वैज्ञानिक मनोविज्ञान को एक आकार दिया है और कुछ अन्य समाज और सांस्कृतियां हैं जो भिन्न वैश्विक दृष्टिकोण रखती हैं, जो अन्य मनोविज्ञानों को सूचित कर सकती है।

7.5.2 भारतीय दृष्टिकोण-दर्शन और धर्म

हमने पहले ही नोट किया है कि भारतीय संस्कृति की विशेषता आध्यात्मिक वैश्विक दृष्टिकोण है। 'दर्शन' और 'धर्म' भारत में यह दोनों संदर्भ प्रयुक्त होते हैं, जो ऊपर दी गई वैश्विक दृष्टिकोण की परिभाषा सहित अनेक कारकों को उद्धष्त करते हैं। वे प्राचीन द्रष्टाओं, ऋशियों और संतों के आध्यात्मिक अनुभवों में गहराई से निहित हैं, जो बाद में वास्तविकता की प्रकृति को तार्किक रूप से समझने की एक प्रणाली के रूप में विकसित हुए। अतः हिन्दू, जैन और बौद्ध दर्शन एवं धर्म भारतीय मनोवैज्ञानिक सिद्धांत की नींव रखते हैं। यह और बात है कि तीनों परम्पराओं में अनेक मतभेद हैं। लेकिन वे कुछ निश्चित आधारभूत विशेषताओं पर एकमत भी हैं, जो हमें भारतीय और पश्चिमी मनोविज्ञान में अंतर

को रेखांकित करने में सहयोग करती हैं। उनमें से कई ऐसी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को नीचे दिये गए अगले खंड में सूचीबद्ध किया गया है।

7.5.3 भारतीय और पाश्चात्य मनोविज्ञान में कुछ उल्लेखनीय अंतर

7.5.3.1 मानवीय स्वभाव

परम्पराएं मानती हैं कि अन्य जानवरों की तरह मनुष्य को भी भोजन, सुरक्षा, काम-वासना और नींद की खास स्वाभाविक या जैविक आवश्यकता होती है। लेकिन एक व्यक्ति-स्त्री या पुरुष-अपनी बुनियादी जरूरतों, संवेगों, जोश और इच्छा-वासनाओं को उदात्त कर सकता है या उन्हें जीत सकता है। व्यक्ति में अपनी क्षमताओं को साकार करने और उन्हें विकसित करने की असाधारण सामर्थ्य होता है जो उन्हें एक अतिमानव के रूप में रूपांतरित कर सकता है, जिन्हें देवी या देवता कह सकते हैं। ऐसे लोग स्थान-काल की सीमा से परे जा सकते हैं और पूरे ब्रह्मांड के साथ जुड़ने का अलौकिक अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। यह उन्हें अपने सहजीवी मनुष्यों और पशुओं के बारे में जानकारी देता है और इस पृथ्वी पर सुदूर घटने वाली घटनाओं; यहां तक कि इसके समानांतर ब्रह्मांड लोक में भी होने वाली किसी घटना की सूचना देता है। वह उन्हें सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ बनाता है।

7.5.3.2 जीवन और मृत्यु

जीवन-मृत्यु एक चक्र है और निरंतर गतिशील है। सभी जीव इस चक्र से गुजरते हैं। मानव बार-बार इस क्रम को प्राप्त करता है और देह की मौत को जीव की जीवनीशक्ति का अंत नहीं माना जाता है। मृत्यु के बाद भी यह यात्रा जारी रह सकती है और आत्मा शीघ्र ही या थोड़ी या निर्धारित खास अवधि के बाद किसी नई देह को धारण कर पृथ्वी पर फिर लौट सकती है।

एक खास जीवन में किये गए संचित कर्मो के परिणाम कुछ प्रवृत्तियों, प्रभावों और आदत के ढर्रे सब संघटित होते हैं, जिन्हें 'कर्म' कहा जाता है। कई जीवनकाल के संचित कर्म वह बल है, जो जन्म और मरण के चक्र को गतिशील रखता है। कर्म ही हमारे कार्य का प्रधान अभिप्रेरक कारक है। लेकिन मनुष्य चेतन रूप से जन्म-मरण के इस चक्र को एक खास जीवन काल में तोड़ सकता है और इस प्रक्रिया का अंत कर सकता है। उसे ही जीव की मुक्ति या 'मोक्ष' कहा गया है।

ऐसे मुक्त जीवों को दैवी व्यक्ति के रूप में आदर-श्रद्धा दी जाती है और उन्हें इसकी स्वतंत्रता मिली होती है कि सांसारिक जीवन में लौट कर दूसरे मानवों को मुक्ति या मोक्ष दिलाने में सहयोग करें।

पश्चिमी मनोविज्ञान पर डार्विन के विकासवादी सिद्धांत का गहरा प्रभाव रहा है, जो मनुष्यों को सर्वश्रेष्ठ नरवानर के रूप में मानता है और इसलिए वह भविष्य में मनुष्य के लिए उपलब्ध किसी विकासवादी संभावनाओं पर विचार नहीं करता।

7.5.3.3 जीवन के लक्ष्य और मूल्य - पुरुषार्थ

प्राचीन काल से ही जीवन के चार लक्ष्यों को मान्यता दी गई है। वे भोजन, नींद, सुरक्षा और काम-क्रिया की जैवीय आवश्यकता नहीं हैं, जो हमारे साथ पशु भी साझा करते हैं। इसके विपरीत, वे लक्ष्य पुरुषार्थ के हैं, जिन्हें मनुष्य जाति सचेत रूप से अपने जीवन में संधान करती है। वे हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

उन लक्ष्यों के मुताबिक जीवन को धार्मिक तरीके से जीने, सम्पत्ति अर्जित करने, उनके जरिये अपनी सांसारिक इच्छा-कामनाओं की पूर्ति करने और अंत में, जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति/मोक्ष की कामना करना है। यहां काम का अर्थ यौनिक आवश्यकता नहीं है, जैसा कि प्रायः गलत समझ लिया जाता है। यह हमारी अन्य मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के बारे में है।

क्रम से इन चारों लक्ष्यों को व्यवस्थित करने का अपना महत्त्व है। इनमें आखिरी लक्ष मोक्ष मनुष्य के अस्तित्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, उच्चतम या सर्वोच्च लक्ष्य है। अतः इसे परम पुरुषार्थ कहा गया है। मनुष्य से यह आग्रह किया जाता है कि वह सम्पत्ति के जरिये अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट करे और मनोवैज्ञानिक इच्छाओं की पूर्ति करे और इस समस्त के दौरान, मोक्ष को अपना अभिप्राय बनाए रखे। इन जरूरतों की पूर्ति की खोज में, किसी व्यक्ति को पहले तो कुछ तय नियमों, नैतिकता और मूल्यों द्वारा निर्देशित होना चाहिए, जो की 'धर्म' है। इसलिए व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह धर्म के दायरे में रह कर जीवन के अन्य लक्ष्यों को पाने की इच्छा करे। अतः धर्म जीवन का पहला लक्ष्य है। धर्म और मोक्ष मिलकर दो ताकतों के रूप में जीवन के निर्देशक सिद्धांत का काम करते हैं। मनुष्य की जीवन यात्रा में एक पीछे से आगे की तरफ ठेलता है और दूसरा सामने से उसे खींचता है। (सालागमे, 2011a)

इसे ध्यान देना चाहिए कि 'मोक्ष' केवल अपने देश में ही हजारों वर्षो से हमारे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बना हुआ है। संभवतः अन्य किसी देश में दक्षिण एशिया को छोड़ कर, जो ऐतिहासिक रूप में भारतीय संस्कृति से प्रभावित रहा हो, मोक्ष की अवधारणा नहीं रही है। हम मोक्ष के विश्वास को जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं और इसे सार्थक जीवन लक्ष्य के रूप में सक्रियता से प्रोत्साहित करते हैं। हमारे देश में अनेक द्रष्टाओं, संतों और ऋशियों ने प्राचीन समय से लेकर आज तक इसकी संभावनाओं को दोहराया है। जबकि दुनिया के अन्य सभी देशों में अन्य तीन लक्ष्य परिभाषित किये गए हैं और जीवन यात्रा में उनका संधान भी किया जाता है, लेकिन वहां मोक्ष पर किसी विचार को नहीं पाते हैं।

जन्म-मरण के चक्र, जीवन के बाद जीवन, पुनर्जन्म और अवतार आदि के विचार पश्चिमी संस्कृति में इतने नहीं मिलते, जितना अधिक हमारी संस्कृति के हिस्सा रहे हैं। यह वह विशेषता है, जो भारतीय और पश्चिमी मनोविज्ञान में अंतर स्पष्ट करती हैं। लेकिन ऐसे जीवन-लक्ष्य पश्चिमी समाजों में पूरी तरह नदारद नहीं हैं। लोग इनका अनुभव करते हैं और ऐसे दृष्यों के बारे में रिपोर्ट करते हैं। इनकी जांच के लिए इंग्लैंड में पहली फिजिकल रिसर्च सोसाइटी की स्थापना की गई थी। इसलिए मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में परा-मनोविज्ञान (parapsychology) आज भी अस्तित्व में है।

हालांकि विगत 50 वर्षो में समूची पश्चिमी दुनिया में आध्यात्मिक खोज का पुनर्रुत्थान हुआ है। कई लोगों ने ऐसे परिदृष्य के बारे में खबर दी है। 'अल्टर्ड स्टेट्स ऑफ कन्षसनेस' यानी चेतना की परिवर्तित अवस्थाएं (टार्ट, 1969) पर बहुत तेजी से अध्ययन किया गया। उसके साथ, चेतना का अध्ययन समकालीन शोध में एक मुख्य विषय बना हुआ है। पश्चिमी शोधार्थियों ने पाया है कि वैदिक और अ-वैदिक दर्शन से सम्बन्धित कई ग्रंथ और संहिताएं चेतना की प्रकृति और मन के बारे में चर्चाओं से भरी पड़ी हैं। एक शोधार्थी ने उन्हें ''चेतना के संकाय'' (consciousness disciplines) (वॉल्श, 1980) कहा है।

7.5.3.4 चेतना और चेतना की अवस्थाएं

विभिन्न विषयों के वैज्ञानिकों के लिए सबसे ज्वलंत सवाल है, चेतना क्या है? आधुनिक मनोविज्ञान में सिर्फ तीन अवस्थाएं स्वीकृत हैं और उन पर अध्ययन होता है; अर्थात् जागृत, स्वप्न और गहरी नींद की अवस्था। जागृत अवस्था में हम अपने को एक कर्ता एक व्यक्ति के रूप में हमारे संवेदक अंगों द्वारा बाहरी दुनिया का अनुभव करते हैं और विगत अनुभवों की स्मृति के जरिये उनको समझते हैं और उन पर विचार करते हैं। स्वप्न की अवस्था में हम बाहरी दुनिया से प्रत्यक्षतः नहीं जुड़े होते हैं। यद्यपि हमारी संवेदी जागरूकता बहुत सीमित होती है, लेकिन भौतिक दुनिया का कोई प्रत्यक्षण नहीं होती। हमारा दिमाग सपना देखने की अवस्था में एक संसार रचता है, 'एक सपनों की दुनिया'। सपने में हम जागृत अवस्था के अनुभवों की तरह ही समूची जैविक संवेदनाओं, अनुभूतियों और भाव-संवेगों का अनुभव करते हैं। हालांकि गहरी निद्रा की अवस्था में बाहरी संवेदी जागरूकता और मस्तिष्क की गतिविधियां दोनों ही काम करना बंद कर देती हैं। फिर हम शांति और आराम का अनुभव करते रहते हैं। स्वप्न की अवस्था और निद्रा की अवस्था में, हम मिस्टर एक्स और मिस वाई के रूप में हमारी पहचान की चेतना को विभिन्न हद तक भूल सकते हैं। जब हम जागते हैं तो 'मैं' की भावना उसी व्यक्ति की तरह पिछले दिन से दूसरे दिन यानी आज के नये दिन में भी जारी रहती है।

हालांकि यह उलझन में डाल देने वाली गुत्थी है कि हम आखिर पहचान की निरंतरता का अनुभव कैसे करते हैं? भारतीय चिंतकों ने यह मानते हुए कि मानव प्राणी ''पारलौकिक जागरूकता'' (transcendental awareness), या ''शुद्ध जागरूकता'' (pure awareness) अथवा ''विषय-रहित जागरूकता'' (contentless awareness) का अनुभव कर सकता है, में उस गुत्थी का हल निकाला है। उपनिषद में, इसे तुरीय (*turiya*) अवस्था कहा गया है। यह *जागृत, स्वप्न* और *सुशुप्ति* (गहरी निंद्रा) के अतिरिक्त चौथी अवस्था है। यह तुरीय अवस्था हमेशा विद्यमान मानी जाती है और हम इसकी पृष्ठभूमि में अपने सभी अनुभवों से गुजरते हैं। केवल यही नहीं, यह वैयक्तिक नहीं है और न ही हमारी मानसिक और शारीरिक अवस्था पर निर्भर है। यह एक स्वतंत्र जागरूकता है जो सबके लिए सुलभ है और सभी में सामान्य रूप से विद्यमान है। पतंजलि के योग सूत्र में ऐसी जागरूकता को '*द्रष्टा*, ऋशि या अनुभोक्ता कहा है, जो सभी मानसिक गतिविधियों (*चित्तवृत्ति*) से स्वतंत्र है। यह बोध बिल्कुल मौलिक है और हम इसे पश्चिमी दर्शन या विज्ञान में नहीं पाते। यह केवल कुछ पश्चिमी रहस्यवादियों, संतों और कवियों की शिक्षाओं में मिलता है।

जागृत, स्वप्न और गहरी निंद्रा के बीच अंतर के कारण जहां मन विभिन्न अवस्थाओं में क्रियाशील रहता है और किसी व्यक्ति के अस्तित्व की निरंतरता के प्रति जागरूकता के कारण; यहां तक कि जब मानसिक गतिविधि ठप पड़ जाती है; हमारे चिंतकों ने 'चेतना' (consciousness) और 'मन' (mind) के बीच अंतर किया है। इसमें चेतना को वैदिक परम्परा में चित्त, चेतना, चैतन्य, प्रज्ञा आदि कहा गया है और मन को मानस, चित्त, अंतःकरण आदि। जैन और बौद्ध इसके लिए भिन्न शब्द प्रयोग करते हैं।

भारतीय चिंतकों को चेतना और मन के बीच किये गए इस स्पष्ट अंतर से मानव प्राणी के लिए संभव हो सकने वाले विविध अनुभवों को समझने में मदद मिली है, जो पश्चिमी लोगों और पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों के लिए भी अबूझ पहेली है। हमारे चिंतकों ने चेतना को न केवल मन की स्वतंत्रता कहा है, बल्कि उन्होंने चेतना को प्रकाश का स्रोत या प्रभा भी कहा है, जिसकी उपस्थिति के कारण ही हमें सारे अनुभव होते हैं। हमारी मानसिक क्रियाकलाप प्रभा और ऊर्जा दोनों के लिए चेतना पर निर्भर करती है। अतः मानस एक जड़ वस्तु है जो कि भौतिक पदार्थ के समान जीवनरहित है। जब कोई व्यक्ति मर जाता है, यह चेतना और

मानसिक प्रभाव एक साथ आकर 'सूक्ष्म और कारण शरीर' (Sukshma nad Karana) निर्मित करते हैं और फिर मृत देह से अलग हो जाते हैं। वह निरंतर एक सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं, फिर एक नया आकार लेते हैं और पुनः जीवन धारण करते हैं।

जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं ने भी कुछ ऐसी ही संभावनाओं को स्वीकार किया है। लेकिन वे एक दूसरे से कुछ निश्चित अर्थों में भिन्न हैं। उदाहरण के लिए जैनियों का मत है कि जीव ही अपने कर्मो के जरिये पूर्णता और पुनर्जन्म तक विकास करता है। वह आत्मा और ब्रह्म के विचार को नहीं मानते। बुद्ध जो आत्मप्रबुद्ध व्यक्ति रूप में आदरणीय हैं, वह चेतना की निरंतरता या परा जागरूकता (transcendental awareness) या आत्मा (*Atman*) के विचार को खारिज करते हैं। उनका कहना था कि चेतना एक जल-प्रवाह की तरह है, जो निरंतर प्रवाहमान और परिवर्तनशील है। तो तीनों भारतीय परम्पराओं में ऐसी ही विभिन्नताएं हैं।

7.5.3.5 चेतना, मन और मानसिक क्रियाकलापों

पश्चिम चिंतक चेतना और मानसिक क्रियाकलापों में अंतर के बारे में कुछ नहीं कहते। वे चेतना और मन को अंतर-परिवर्तनीय मानते हैं। जो उलझन बढ़ाने का प्राथमिक कारण प्रतीत होता है। दूसरे, आधुनिक मनोवैज्ञानिक मस्तिष्क को एक अंग मानते हैं, जो मानसिक क्रियाकलापों को जन्म देता है। इसे ''उपफल'' (epiphenomenon) कहा गया है। लेकिन भारतीय परम्पराओं में मानसिक गतिविधियों को एक तरफ षुद्ध चेतना से और दूसरी तरफ भौतिक शरीर से पृथक माना गया है।

हम चेतना (Consciousness) को चेतना, चैतन्य, प्रज्ञा कहते हैं ओर मन (mind) को चित्त और मानस कहते हैं। अनेक चिंतक यहां सांख्य सिद्धांतकारों से सहमत होते हैं कि मन सूक्ष्म पदार्थ है और शरीर स्थूल पदार्थ है जबकि ये दोनों ही सत्त्व, रजस और तमस जैसे तीन गुणों से संघटित होते हैं। मानस को इंद्रिय भी माना गया है, जो सुख और पीड़ा की अनुभूति करता है जो इच्छाओं, अनुभूतियों और आकांक्षाओं का अनुभव करता है। उपनिषद साहित्य में, मानस का स्थान संवेदी अंगों और बुद्धि के बीच में रखा गया है। संवेदी अंग बाहरी दुनिया से प्रभावों को ग्रहण करते हैं, मानस इसको संसाधित करता है और इन पर निर्णय लेने के लिए बुद्धि को सौंप देता है। बुद्धि अपना काम करने के लिए चेतना से प्रकाश लेती है। इसको प्रतिबिम्बित प्रकाश कहा गया है, जैसे सूर्य के प्रकाश से चंद्रमा चमकता है।

बुद्धि को 'चित्त' (chitta) की भी सहायता मिलती है, जो हमारे विगत के सभी प्रभावों और ज्ञान का भंडार गृह है। इसलिए इसे 'स्मृति का कोशागार' भी कहते हैं। जब एक व्यक्ति अपनी अहम् अनुभूतियों को जमा करता है, जिसे अहंकार कहते हैं, तब व्यक्ति मानस, बुद्धि की मानसिक क्रियाकलापों को हस्तगत करता या जिम्मेदारी लेता है। यह बिल्कुल संभव है कि हमारी मानसिक क्रियाकलाप बिना इस पर स्वामित्व या दावे के भी जारी रहे। जब एक व्यक्ति अपनी सभी मानसिक क्रियाकलापों में 'मैं' को अधिकाधिक संलग्न करता जाता है, तब वह अधिकाधिक आनंद और पीड़ा, खुशी और शोक, संतुष्टि और असंतुष्टि का अनुभव करता है। इसलिए उपनिषद हमें बताते हैं कि बिना अपने स्वामित्व का दावा किये मानसिक क्रियाकलापों/गतिविधियों को यों ही होते रहने दो। मानसिक क्रियाकलापों के साथ 'मैं-भावना' को संलग्न करना मन के काम करने के लिए आवश्यक नहीं है। यह तो स्वयं ही अपने को सक्रिय रखता है। उन गतिविधियों के साथ अपने कर्तापन की पहचान (अभिमान या साहचर्य) नहीं जोड़ना पीड़ा और दुख से बचे रहने की एक रणनीति है। इसको ही आधुनिक शब्दावली में असम्बद्धता या असम्पृक्त (detachment/delinking) कहते हैं। वैदिक परम्परा के कुछ विचारों को स्वीकार करने के मामले में जैन और बौद्ध परम्पराएं भिन्न हैं।

स्व आकलन प्रश्न 3

1) वैश्विक दृष्टिकोण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) तीन गुण क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारतीय चिंतन में जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति को किस रूप में जाना जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) पुरुषार्थ क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) जागरूकता की चार अवस्थाएं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

7.6 योग, ध्यान और अन्य स्वदेशी पद्धतियों का महत्त्व

वर्तमान समय में योग और ध्यान शब्द पूरी दुनिया में बहुत लोकप्रिय हो गया है। संयुक्त राष्ट्र ने 11 दिसम्बर 2014 को ''अंतरराष्ट्रीय योग दिवस'' के रूप में 21 जून को मनाने की घोषणा की थी। 2015 से यह पूरे विश्व के लगभग 200 देशों में मनाया जाता है। (http://www.un.org/en/events/yogaday/).

लोकप्रिय योग की वर्तमान समझ प्रायः शरीर की कुछ मुद्राओं का अभ्यास (आसन), सांस लेने-छोड़ने की प्रक्रिया (प्राणायाम) और ध्यान (धारणा एवं ध्यान) तक सीमित हो गया है। योग के बारे में ऐसे सरल विचारों को कुछेक लोगों द्वारा विगत पांच दशकों में लोकप्रिय कर दिया गया है। विशेषकर कुछ प्रारम्भिक शोधों के इस नतीजे के बाद कि योग मनोवैज्ञानिक स्तर पर तनाव, चिंता और कुंठा आदि को कम कर सकते है तथा शारीरिक स्तर पर भी रक्तचाप, हृदय गति, मांसपेषियों में ऐंठन आदि को घटा सकता है (मरफी एवं डोनोवन, 1988; मर्फी, डोनोवन और टेलर, 1997)। अधिकतर योग प्रशिक्षक योग सम्बन्धी अपनी शिक्षा को ऐसे ही मनोवैज्ञानिक और शारीरिक परिवर्तन लाने तक सीमित रखते हैं। इसी लक्ष्य को साधने के लिए दुनिया भर के लाखों लोग योग और ध्यान के कुछ रूपों का अभ्यास करते रहे हैं।

इसलिए, योग और ध्यान को 'उपचार का देशज रूप' (indigenous forms of therapy) माना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हेल्थ (राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान) ने आयुर्वेद, एक्यूपंक्चर (सूचीभेद), योग और कई ऐसी मध्यवर्त्ती पद्धतियों को ''पूरक, वैकल्पिक और एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोण'' के अंतर्गत विचार किया है (https://nccih,nih.gov/heatlth/integrative-health)। भारत में, केंद्र सरकार ने एलोपैथी चिकित्सा के अलावा, भिन्न चिकित्सा पद्धतियों, जिनमें आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्धा और होमियोपैथ शामिल है, को प्रोत्साहन देने के लिए एक अलग मंत्रालय (आयुश) (AYUSH) का गठन किया है। इन पद्धतियों को बढ़ावा देने के लिए सरकार की एजेंसियां भी कार्यरत हैं। (http://ayush.gov.in/schemes/central-sector-central-sector-scheme).

उपचार के इस अनुप्रयोग के अलावा, योग को एक खेल गतिविधि भी माना जाता है और योग प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जाता है। हाल ही में भारत सरकार के युवा मामले और खेल मंत्रालय ने गैर-ओलम्पिक खेल विधायों के अंतर्गत योग को खेल की एक गतिविधि के रूप में घोषित किया है। इन सभी ने मिलकर योग को करोड़ों डॉलर का उद्योग बना दिया है। (https://www.franchiseindia.com/wellness/Yoga-A-multi-billion-dollar-apportunity-market-poised-togrow. 8983).

मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े अन्य संकायों में, योग और विभिन्न परम्पराओं से ध्यान की विविध तकनीकें प्राथमिक रूप से तीन तरह से प्रयुक्त होती हैं : (a) तनाव घटाने की कार्यनीति; (b) उपचारात्मक उपकरण के रूप में, और संवृद्धि संवर्धन तकनीक के रूप में; और (c) चेतना की परिवर्तित अवस्था (altered states of consciousness) प्रेरित करने की तकनीक के रूप में। शोधकर्ताओं और चिकित्सकों ने इसमें मन और शरीर की अंतःक्रिया के संदर्भ में जुड़े क्रियाविधि और प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास किया है। इस उद्देश्य के लिए तंत्रिका मनोवैज्ञानिक, शारीरिक-मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक, व्यावहारिक, संज्ञेयात्मक-व्यवहार और मानववादी प्रतिरूपों और सिद्धांतों का उपयोग किया जाता रहा है। ऐसे सभी प्रयासों को ''योग के मनोविज्ञान'' के रूप में विचार किया जा सकता है (सालागामे, 2011a)।

हालांकि ऐसे दृष्टिकोण योग और ध्यान की मूल मनसा और उद्देश्य के साथ न्याय करने में विफल हो गए हैं, जिनके लिए योग और ध्यान की अन्य तकनीकों को भारतीय संदर्भ में विकसित किया गया था। प्राथमिक रूप से उन्हें सभी मानसिक क्रियाकलापों को शांत करके या स्थिर कर सामान्य जागृत अवस्था के परे जागरूकता की अवस्था (योग चित्तवृत्ति निरोध- पतंजलि योग सूत्र, अध्याय-1, सूत्र-2) का अनुबोध कराना था। योग का यह आध्यात्मिक उद्देश्य योग के समकालीन दृष्टिकोण से पूर्णतया भिन्न है, जिसमें योग का उपयोग केवल मानसिक कार्यकलापों के सवंर्धन के लिए किया जाता है।

योग चार प्रकार के हैं- ज्ञान योग, भक्ति योग, राज योग और कर्म योग। भारत में इन योगों को विभिन्न मतों द्वारा लोगों के स्वभाव में व्यक्तिगत अंतर और अभिप्रेरक गुणों की आवश्यकता पूर्ति के लिए अतीन्द्रिय आत्म-साक्षात्कार करने के लिए विकसित किया गया है। इनमें से प्रत्येक के दैनिक जीवन पालन करने के लिए अलग-अलग नुस्खे हैं। अतः योग के समकालीन दृष्टिकोणों को योग के मौलिक उद्देश्यों में अंतर करने की आवश्यकता है क्योंकि योग मूलतः एक प्रणाली और मनोवैज्ञानिक आयाम से जुड़ा है, जिसे '' योग मनोविज्ञान'' कहा जा सकता है (सालागमे, 2011b)। इस अंतर को समझने और योग की वास्तविक महत्ता के प्रतिपादन के क्रम में यह आवश्यक है कि मनोविज्ञान विषय में हुए कुछ समकालीन विकासों का व्यापक अवलोकन किया जाए।

7.6.1 मनोविज्ञान विषय में समकालीन विकास

समकालीन मनोविज्ञान एक चौराहे पर है। जब 1879 में इसे औपचारिक रूप से एक वैज्ञानिक विषय के रूप में स्थापित किया गया था, तो इस पर विश्व के भौतिकवादी विचार अपनाने पर जोर दिया गया था, जो भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानों की विशेषता थी। परिणामस्वरूप, इसमें आत्मा और चेतना के अध्ययन को छोड़ देना पड़ा था; क्योंकि ये बिना किसी अनुभवजन्य साक्ष्य के आध्यात्मिक विचार माने जाते थे। तब प्रचलित वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करते हुए इनका अध्ययन नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार मुख्यधारा के अकादमिक मनोवैज्ञानिको ने लगभग एक सदी तक उन्हें उपेक्षित किया; यहां तक कि इन्हें वैज्ञानिक जांच के लिए उपयुक्त विषय के रूप में खारिज कर दिया गया। यद्यपि कार्ल जुंग, विलियम जेम्स और परा-मनोवैज्ञानिकों की चेतना और मानसिक परिघटना के अध्ययन में रुचि थी, लेकिन उनका काम हाषिए पर ही रहा और मनोविज्ञान की लोकप्रिय पाठ्यपुस्तकों में उनका कभी उल्लेख नहीं किया गया। हालांकि इस स्थिति में अब तक कोई अहम बदलाव नहीं हुआ है फिर भी भौतिक और प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में हुए कई विकासों ने यह सुझाव दिया है कि आधुनिक विज्ञान और आधुनिक मनोविज्ञान को नियंत्रित करने वाला भौतिकवादी निदर्शन अब ज्यादा प्रासंगिक नहीं रहा है। यह विश्वास कि 'पदार्थ आधारभूत' है'' (matter is primary) और 'भौतिकवादी विश्व ही यथार्थ' है, (material universe alone is real) धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है।

स्वयं भौतिक विज्ञान में हुई हालिया खोजें भी 'चेतना की प्राथमिकता' की तरफ संकेत कर रही हैं। विश्व के बारे में एक नया विचार उभर रहा है, जो इस पर बल देता है कि वास्तविकता की स्वरूप समझने में चेतना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इनमें कुछेक का यहां तक सुझाव है कि चेतना वास्तविकता को आकार देती है। अतः मानवीय चेतना की सरूप का अध्ययन अभी मुख्य विषय है और यह समकालीन भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, तंत्रिका विज्ञान और मनोविज्ञान का नया विषय है। चेतना के अध्ययन में दिलचस्पी रखने वाले शोधार्थियों ने यह अनुभव किया है कि विश्व की रहस्यमयी और आध्यात्मिक परम्पराओं में, खास कर भारत में विकसित हुई हिन्दुत्व और बौद्ध परम्पराओं में कई मूल्यवान और

उपयोगी अंतर्दृष्टियां अंतर्निहित हैं। उन शोधार्थियों के लिए ये परम्पराएं महज धार्मिक परम्पराएं नहीं हैं। वे एक खास तरह के मनोविज्ञान को प्रस्तुत करती हैं। ''गूढ़ मनोविज्ञान'' (esoteric psychology) (आर्नस्टाइन, 1972), ''आध्यात्मिक मनोविज्ञान'' (spiritual psychology) तथा ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान (transpersonal psychology) (टार्ट 1975) जैसे संदर्भ इसके उपयोग पर जोर देते हैं। वाल्ष (1980) उन्हें ''चेतना के विषयों'' के रूप में वर्णन करते हैं। टार्ट (1975) कुछ विशेषताओं को सूचीबद्ध करते हैं, जो ''रूढ़िवादी पश्चिमी मनोविज्ञान'' और ''ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञानों'' को अलग करती हैं। चेतना के अध्ययन और ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास ने मनोविज्ञान में विषय-वस्तु और अनुसरण की जाने वाली पद्धति दोनों की पुनर्समीक्षा की जरूरत को रेखांकित किया है।

इसके विपरीत, अनेक जांचकर्ता पाते हैं कि एशियाई समाजों ने अभी तक ''आध्यात्मिक'' वैश्विक दृष्टिकोण बरकरार रखा है। अतः प्राथमिक मत है कि आधुनिक मनोविज्ञान जो भौतिकवादी वैश्विक दृष्टिकोण के ढांचे में विकसित होकर मौजूदा वैज्ञानिक मत को अपना रहा है, वह उन लोगों के व्यवहारों के अध्ययन के प्रति न्याय नहीं करता, जो अभी तक आध्यात्मिक वैश्विक दृष्टिकोण बरकरार रखे हुए हैं और उनके मुताबिक ही आचरण करते हैं। यह दावा कि आधुनिक मनोविज्ञान सार्वभौमिक मनोविज्ञान है, इस पर उठे सवाल पश्चिमी और गैर-पश्चिमी मनोविज्ञान/एशियाई मनोविज्ञान में अंतर की तरफ ले जाते हैं (सिन्हा, डी, 1984)।

लेकिन जैसे-जैसे उत्तरोत्तर अनुसंधान होता गया, मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि खुद पश्चिमी संस्कृतियों में भी कई महत्त्वपूर्ण मतभेद हैं। अनेक लेखकों ने टिप्पणी की कि आधुनिक मनोविज्ञान अमेरिकी समाज के मूल्यों को परिलक्षित करता है, न कि सभी पश्चिमी समाजों के। यह ''अमेरिकियों द्वारा, अमेरिकियों के लिए और अमेरिकियों का है'' (किम और बेरी, 1993)। एक अमेरिकी शोधार्थी ने इससे भी एक कदम और आगे बढ़ते हुए दावा कि तथाकथित अमेरिकी मनोविज्ञान तो उत्तरी अमेरिकी की समस्त आबादी तक का प्रतिनिधित्व नहीं करता। यह केवल प्रथम वर्ष के अंतर-स्नातक (अंडर ग्रेजुएट) छात्रों के अध्ययन से विकसित किया गया मनोविज्ञान है, लिहाजा यह ''शुरूआती मनोविज्ञान'' (sophomore psychology) है (मक, 1995)।

पद्धतिगत विचार से अनेक मनोवैज्ञानिक अनुभव करते हैं कि मनोविज्ञान में लागू की गई परिमाणात्मक और प्रायोगिकी प्रक्रियाएं मनोवैज्ञानिक घटनाओं के साथ न्याय करने में विफल रही हैं क्योंकि वे वैयक्तिक विलक्षणता को समझने के बजाय औसत के नियम तक पहुंचने का रुझान रखती हैं। जैसा कि गॉर्डन अलपोर्ट ने कहा है कि वे ''व्यक्तिवृत्त'' (idiographic) होने के बजाय ''नियमान्वेशी'' (nomothetic) हैं। अतः, अन्य गुणात्मक प्रक्रियाओं को विकसित किये जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार, पश्चिमी दुनिया के भीतर और इसके बाहर की समूची आबादी के सामान्यीकरण के संदर्भ में आधुनिक मनोविज्ञान की सीमाओं के प्रति मनोवैज्ञानिकों की बढ़ती समझ का परिणाम है कि ''मनोविज्ञान के पुनर्विचार'' और ''मनोविज्ञान में पद्धतियों का पुनर्विचार'' की आवश्यकता महसूस हो रही है (स्मिथ, हर्रे एवं लैंगहोव, 1995ए एवं बी)।

ये सभी विकास धीरे-धीरे उस दिशा में ले गए जिसे आज ''स्वदेशी मनोविज्ञान अभियान'' के रूप में जाना जाता है। पूरे विश्व के मनोवैज्ञानिकों ने उनके संबंधित संस्कृतियों विशेष में उपलब्ध मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टियों और अवधारणाओं को विकसित करने में अभिरुचि ली। इन देशों में अफ्रीका, कनाडा, चीन, फिजी, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, हांग कांग, भारत, ईरान, जापान, कोरिया, लैटिन अमेरिका, मैक्सिको, फिलिपींस, पोलैंड, रूस, स्कैंडिनेविया, ताइवान,

तुर्की, वेनेजुएला, जाम्बिया और यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका भी शामिल थे! (किम एंड बेरी, 1993)। इस प्रयास का औचित्य संस्कृति विशिष्ट देशज मनोविज्ञानों से प्राप्त साझी अंतर्दृष्टियों और समझ के जरिये 'सच्चा वैश्विक मनोविज्ञान' विकसित करना था।

इस परिप्रेक्ष्य में, भारतीय मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का विकास सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, जो वास्तविक सार्वभौमिक मनोविज्ञान के विकास में मूल्यवान अंतर्दृष्टियां प्रदान कर सकता है। भारतीय मनोविज्ञान चेतना के परिप्रेक्ष्य और सामाजिक-सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टिकोणों से समकालीन रूप से प्रासंगिक है।

यद्यपि 19वीं सदी में भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानवेत्ताओं ने इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया था। किंतु भौतिकी, जीवविज्ञान, औशधि और तंत्रिका विज्ञान के क्षेत्रों में हुए कई विकासों ने चेतना की समस्याओं को अग्रिम मोर्चे पर ला दिया। इन क्षेत्रों के कुछ वैज्ञानिक तो खुलेआम यह स्वीकार करने लगे हैं भौतिकवादी वैश्विक दृष्टिकोण जिसका दावा है कि ब्रह्मांड में जो कुछ भी मौजूद है, वह केवल पदार्थ है, अनुसमर्थन योग्य नहीं है। वे कहते हैं कि ब्रह्मांड में चेतना आधारभूत है, पदार्थ नहीं। इस परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन के साथ ही, वे वैदिक परम्परा के आध्यात्मिक ग्रंथों; जैसे कि चार वेदों, उपनिषदों, वेदांत पद्धति के आलेखों और कश्मीरी शैववाद, योग सूत्रों, न्याय और नव्य-न्याय; बौद्ध परम्परा के चार आदेशों, जैन, बौद्ध धर्म और ताओवाद का अध्ययन करने में गहरी रुचि भी लेने लगे हैं। जैन ग्रंथों के अध्ययन अभी अपेक्षाकृत कम हैं चूंकि उन्होंने इन वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी तरफ नहीं खींचा है। जबकि भौतिक और प्राकृतिक वैज्ञानिक इस बात की जांच कर रहे हैं कि वास्तविकता और ब्रह्मांड के प्रकृति के बारे में उनका ज्ञान इन परम्पराओं के ग्रंथों से किसके साथ संगत है। चिकित्सा वैज्ञानिक मन एवं शरीर के सम्बन्धों और मस्तिष्क एवं चेतना के बीच सम्बन्ध की समस्याओं को लेकर हैरान हैं।

सामान्य व्यक्ति से लेकर, अनेक शोधार्थियों व पेशवरों तक ने मादक द्रव्यों जैसे मरिजुआना, सिलोसाइबिन और एलसडी के प्रभावों में, ध्यान के दौरान, और यहां तक कि जैसा माश्लोव कहते हैं, चरम अनुभवों के दौरान चेतना की परिवर्तित अवस्थाओं के बारे में बताया है। इसने चेतना की प्रकृति को समझने के लिए जिज्ञासा को और अधिक बढ़ाया है। वे वास्तविकताओं के प्रति हमारी समझ और विश्वासों का खंडन करते हैं। कई लोगों ने पाया है कि उन्हें समान अनुभव हुए हैं और कभी-कभार तो उनके अनुभव भारत में कुंडलिनी योग में पारंगतों के दिये गए विवरणों के एकदम हू ब हू हुए हैं। वेदांत साहित्य में समाधि की अवस्थाओं के विवरणों और प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल के कई द्रष्टाओं, ऋशियों तथा संतों के रहस्यमय अनुभवों के बारे दिये गए उनके पहले निजी विवरणों में कई समानताएं मिलती हैं।

जबकि ट्रांसपर्सनल मनोवैज्ञानिक और चेतना की अवस्थाओं के प्रतिरूपों (मॉडल्स), सिद्धांत को विकसित करने के प्रयास में व्यस्त हैं। वहीं तंत्रिका मनोवैज्ञानिक मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र के सह-सम्बन्धों को जांचने की कोशिश में व्यस्त हैं। देह के बाहर के अनुभवों (Out-of-Body Esperiences, OBEs) की परिघटना और मृत्यु के निकट के अनुभव (Near-Death-Experiences, NDEs) ने उनको चुनौती दी है क्योंकि संवेदी जागरूकता के आधार पर संज्ञान के मौजूदा सभी सिद्धांत यहां विफल हो जाते हैं। OBEs और NDEs में दर्ज कराए गए अनुभव पांच संवेदी अंगों की मध्यस्थता से नहीं मिलते और सामान्य जाग्रत चेतनाओं के मानदंडों का अभिसमर्थन नहीं करते। विशेष कर, मृत्यु-निकट के अनुभवों के मामले में, जहां भुक्तभोगी सामान्य अवस्था में लौटकर जो बताते हैं, वह या तो कोमा की स्थिति प्रतीत होती है या सर्जनों, चिकित्सकों, या अन्य चिकित्सा विशेषज्ञों से इलाज के दौरान मौत होने की आशंका से डरे हुए होते हैं।

अगर कोई व्यक्ति योगाभ्यास और तप साधना द्वारा चेतना और मानसिक क्रियाकलापों में अंतर को अनुभव करता है और उस चेतना द्वारा इसकी पहचान करता है, ऐसे व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार प्राप्त (self-realized) अथवा 'आत्म ज्ञानी' (Atma jnani) कहते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए वर्तमान के शरीर के मृत्यु के बाद, जीवन का चक्र या जन्म-मरण के चक्र का बंधन समाप्त हो जाता है। तभी कहा जाता है कि उस व्यक्ति ने इसी जन्म में 'मोक्ष' या 'जीवनमुक्ति' को प्राप्त कर लिया है।

समकालीन ट्रांसपर्सनल मनोवैज्ञानिक बौद्ध साहित्य से अधिक परिचित हैं। इसकी वजह यह है कि बौद्ध धर्म अनेक देशों में फैला हुआ है। हालांकि उनमें से अनेक मनोवैज्ञानिकों ने सीधे आध्यात्मिक गुरुओं से वैदिक परम्परा के साहित्य का अध्ययन भी किया है। योगाभ्यास और साधना भी की है। यद्यपि जैन साहित्य ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान को दिशा देने में महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालने की सामर्थ्य रखता है, लेकिन बहुत से विद्वान इससे अनभिज्ञ हैं।

चेतना के बारे में भारतीय विचार और चेतना की अवस्थाओं के विवरण समकालीन विज्ञान में प्रासंगिक हैं। ऐसा इसलिए कि हमारे प्राचीन चिंतक अपनी जागरूकता को सिर्फ संवेदी अवधारणा तक सीमित नहीं करते। 'अपरोक्ष अनुभूति' और 'योगी प्रत्यक्ष' भी संभव है। यह प्रत्यक्ष और त्वरित संज्ञान है, संवेदी जागरूकता पर आश्रित नहीं हैं। हमारे ऋशि, योगी, मुनि, सिद्ध, और अन्य आध्यात्मिक गुरु में यह असामान्य क्षमता होती थी। वे दूरस्थ घटित हो रही घटनाओं और अन्य लोगों के मन में होने वाली चीजों को 'जान' सकते थे। वह बिना उस घटनास्थल पर गए और संबद्ध व्यक्ति से बातचीत या किसी भी रूप में संवाद किये बिना ही घटनाओं या परिवर्तनों के बारे में बता सकते थे। आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान ऐसी मानवीय क्षमता की थाह नहीं पा सका है।

''सामाजिक संरचनावाद'' से प्रभावित मनोवैज्ञानिकों के समूह का तर्क है कि चूंकि संस्कृति और मन अंखड रूप से एक दूसरे से जुड़े हैं, लिहाजा सार्वभौम मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों, सिद्धांतों, प्रतिरूपों (मॉडल्स) और नियमों को विकसित करना कठिन है। उनका कहना है कि ऐसे सार्वभौमिक नियम और सिद्धांत मनोविज्ञान में संभव नहीं हैं और उनको शामिल किये जाने की मांग करना समय की बर्बादी है। अतः वे संस्कृति विशेष मनोविज्ञान को विकसित करने का विचार देते हैं। दूसरी ओर, कुछ विद्वान सोचते हैं कि ऐसे साझा सिद्धांतों एवं नियम-कायदों के समुच्चय (सेट) तक पहुंचना संभव है, जो सार्वभौमिक रूप से वैध हों, लेकिन ऐसा केवल अनेक संस्कृति विशेष ''देशज मनोविज्ञानों'' के विकसित होने के बाद ही संभव हो सकता है। मानव विज्ञान के शब्दों का उपयोग करें तो देशज मनोविज्ञान ''एमिक'' (emic) है, जबकि सार्वभौमिक मनोविज्ञान ''एटिक'' (etic) है। इसलिए, कुछ विद्वानों का तर्क है कि आधुनिक मनोविज्ञान वास्तव में सार्वभौमिक नहीं है, क्योंकि यह ''एटिक को थोपता'' है। वे कहते हैं कि असली सावैभौमिक मनोविज्ञान को विकसित करने के लिए हमें विभिन्न संस्कृतियों से कई सारे ''देशज मनोविज्ञान'' (एमिक्स) का विकास करना पड़ेगा। उनको रचने के बाद हम एक सामान्य सिद्धांतों और नियम-कायदों के एक समुच्चय (सेट) को तैयार कर सकते हैं, जो ''एटिक से व्युत्पन्न'' हो (किम एंड बेरी, 1993)।

7.7 सारांश

आधुनिक वैज्ञानिक मनोविज्ञान जो पश्चिमी सांस्कृतिक संदर्भ में उद्भष्त हुआ है, वह भौतिकवादी वैश्विक दृष्टिकोण से नियंत्रित होता है और वह न्यूनतावादी निदर्शन है। वैश्विक नजरिया वास्तविकता के स्वरूप को संदर्भ प्रदान करता है, जो बदले में क्या मौजूद है? क्या संभव है? और कौन से लक्ष्य हासिल किये जा सकते हैं? आदि मसलों पर कुछ

निश्चित धारणाओं और सीमित कथनों को रचता है। उनके लिए ब्रह्मांड की प्रकृति, मानव की प्रकृति और अस्तित्व, जैसे कि मन आदि परिभाषित किये गए हैं; इनके किसी भी विषय में ज्ञान के विकास के लिए निहितार्थ है। मनोविज्ञान में इसने अपने क्षेत्र को संवेदी चैनलों के माध्यम से संभव मानवीय अनुभवों की जांच तक सीमित कर लिया है। दूसरे, मन और चेतना एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। मानसिक क्रियाकलाप की प्रकृति विशिष्ट प्रक्रिया तक सीमित है, जो बुद्धि द्वारा निर्देशित होती है। मनुष्य प्राथमिक रूप से एक पशु के रूप में देखा जाता है और सम्पूर्णता में मानव व्यवहार को जैवीय तथा सामाजिक कारकों द्वारा निर्धारित होना माना जाता है।

इसके विपरीत, भारतीय मनोविज्ञान आध्यात्मिक वैश्विक दृष्टिकोण से संचालित होता है। यह घोषणा करता है कि पदार्थ नहीं, बल्कि चेतना आधारभूत है। इसमें मन और चेतना के बीच भेद किया गया है। मानव प्राणी को दैवीय सामर्थ्य से युक्त माना गया है और जीवन का लक्ष्य उस देवत्व को अपने अंतर्मन में महसूस करना है। जीवन के अन्य सभी लक्ष्यों एवं अभिप्रेरणाओं को सहायक एवं अप्रधान माना जाता है। मानसिक क्रियाकलापों में सहज अंतर्ज्ञान (intuitive) की प्रक्रियाएं शामिल हैं। मनुष्य द्वारा संवेदी क्षेत्र के परे व्यापक अनुभव की श्रृंखला हासिल करना संभव है। लेकिन ऐसे सभी अनुभवों को परम या अंतिम नहीं माना जा सकता। इन सबके परे की अवस्था 'शुद्ध चेतना' के रूप में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मानव जीवन के लिए आदर्श मानी जाती है। इसी ढांचे में मानव व्यवहार को समझा जाता है।

7.8 प्रमुख शब्द

मनोविज्ञान का स्वदेशीकरण : इसके मायने भारतीय संदर्भ में आधुनिक मनोविज्ञान की बुनियादी प्रत्यक्षणों थियरिज, मॉडल्स और उपायों को अपनाना है।

देशज मनोविज्ञान : ''संस्कृति एक स्रोत के रूप में '' इस विचार पर फोकस करता है।

भारतीय मनोविज्ञान : मानव जीवन और व्यवहार के अन्य पहलुओं के अध्ययन में भारतीय परिप्रेक्ष्य पर बल देता है। यह अनूठी भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को उभारता है।

वैश्विक दृष्टिकोण : यह ''ब्रह्मांड और उसमें रहने वाले जीवन के निरूपण का तरीका है, यह क्या है और क्या हो सकता है दोनों के संदर्भ में है।'' (कोल्टको-रिवेरा, 2004)

कर्म : निश्चित प्रवृत्तियों, प्रभावों और आदतों के ढंग से बने होते हैं, जो किसी खास जीवन में संचित कार्यों के परिणाम होते हैं।

मोक्ष : इसे मुक्ति या जन्म और मरण के चक्र को तोड़ना कहा जाता है, जो अनेक जीवन में किये गए संचित कर्म के चलते जारी रहता है।

7.9 स्व आकलन प्रश्नों के उत्तर

स्व आकलन प्रश्न 1

1) भारतीय चिंतक के दर्शन के आधार पर मनोविज्ञान विकसित हुआ है - यह विभिन्न शाखाओं की तरफ संकेत करता है, जिसकी बुनियाद एक विशेष व्यक्तिवादी दार्शनिक दृष्टिकोण के नेतृत्व में रखी गई है। उदाहरण के लिए एकात्म मनोविज्ञान महर्षि अरबिन्दो के एकात्मक विजन से प्रेरित है।

2) अर्थशास्त्र और चाणक्य नीति आर्थिक और राजनीतिक क्रियाओं के बारे में चर्चा करती है।

3) 'प्रतिपालक नेतृत्व का पाठ' जे.बी.पी सिन्हा ने दिया था।

स्व आकलन प्रश्न 2

1) एस.के. रामचंद्र राव द्वारा लिखी उत्कृष्ट किताब का नाम है- भारत में मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का विकास (1962)

2) भारतीय मनोविज्ञान के कुछ प्रमुख स्रोत हैं-वेद, उपनिषद, ज्योतिषशास्त्र, अर्थशास्त्र, नाटयशास्त्र और धर्मशास्त्र

3) दर्शन भारतीय दर्शनशास्त्र की पद्धतियां हैं।

स्व आकलन प्रश्न 3

1) कोल्टको-रिवेरा (2004, पेज-4) ने वैश्विक दृष्टिकोण को ''ब्रह्मांड और उसमें रहने वाले जीवन, क्या है और क्या हो सकता है, दोनों ही संदर्भ में विवेचन के एक तरीके'' के रूप में परिभाषित किया है।

2) तीन गुण हैं-सत्त्व, रजस और तमस।

3) मोक्ष

4) पुरुषार्थ वह है जिसे मानव प्राणी सचेतन रूप से सार्थक खोज के रूप में चयन करता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष शामिल है। वे धार्मिक जीवन, सम्पत्ति-परिसम्पत्तियों का अर्जन करने, इच्छा-कामनाओं की पूर्ति करने, और आखिर में जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति होने की आकांक्षा से जुड़ा है।

5) जागरूकता की चार अवस्थाएं हैं-जागृत (waking), स्वप्न (dream), सुशुप्ति (deep sleep) और तुरीय (transcendental awareness)।

7.10 इकाई के अंत में प्रश्न

1) भारतीय मनोविज्ञान चेतना के बारे में अपने विचारों के संदर्भ में पश्चिमी मनोविज्ञान से किस प्रकार भिन्न है?

2) दोनों मनोविज्ञानों (भारतीय और पश्चिमी) में जीवन और मरण को लेकर क्या मतभेद हैं?

3) भारतीय मनोविज्ञान में मन और मानसिक अवस्थाओं को किस तरह से समझा जाता है?

4) मनोविज्ञान में समकालीन विकास क्या हैं जो भारतीय मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को वैश्विक संदर्भ में प्रासंगिक बनाता है?

5) देशज मनोविज्ञान क्या है?

6) मनोविज्ञान का स्वदेशीकरण क्या है?

7) भारतीय मनोविज्ञान क्या है?

8) योग के मनोविज्ञान और योग मनोविज्ञान में अंतर करें।

9) मनोविज्ञान में समकालीन विकास क्या हैं जो भारतीय मनोविज्ञानिक विचार को वैषिक संदर्भ में प्रासंगिक बनाते हैं?

7.11 संदर्भ

Akhilananda, S. (1948). *Hindu psychology: It's meaning for the west.* London: George Routledge & Sons.

Akhilananda, S. (1952). *Mental health & Hindu psychology.* London: George Routledge & Sons.

Aurobindo (1910). Eight essays on "system of national education". *Karmayogin – Feb 12 – Apr 2.*

Dalal, A.K. (2002). Psychology in India: A historical introduction. In G. Misra and A.K. Mohanty (Eds.), *Perspectives on Indigenous Psychology* (PP. 79-108) New Delhi: Concept Publication Company.

David, Rhys, C. A. F. (1914). *Buddhist psychology.* London: G. Bell & Sons.

David, Rhys, C. A. F. (1936). *The Birth of Indian Psychology and its development in Buddhism.* London: G. Bell & Sons.

Kim, U. & Berry, J.W. (1993). *Indigenous Psychologies: Research and experience in cultural context*. (Eds.) New Delhi: Sage publications.

Koltko-Rivera, M. E., (2004) The Psychology of Worldviews, *Review of General Psychology,*8 (1), 3–58.

Mehta, M. L. (1957) *Jaina psychology: A psychological analysis of the Jaina doctrine of karma.* Amritsar: Jaina Dharma Pracharak Samiti (2nd Edition – Varanasi: Parshwanath Vidyapeeth, 2002) (Foreward – Dr. M.V. Govindaswamy).

Much, N. (1995). Cultural psychology. In J.A. Smith, R. Harre, & L. V. Langenhove (Eds.), *Rethinking psychology*. New Delhi: Sage.

Murphy, M & Donovan, S (1988). The physical and psychological effects of meditation: A review of contemporary research. California: Esalen Institute.

Murphy, M & Donovan, S & Taylor, E. (1997). *The physical and psychological effects of meditation: A review of contemporary research -1931-1996.* (2nd Ed.) Sausalito, CA: Institute of Noetic Sciences.

Ornstein, R. E. (1972). *The Psychology of consciousness.*New York: Penguin Books.

Rao, S. K. R. (1962).*Development of psychological thought in India.*Mysore: Kavyalya Publishers.

Salagame, K.K.K., (2001). Developing Indian psychological concepts: Paradigmatic issues.*Workshop on Indian psychological insights into human welfare.Department of Psychology, Karnātak University, Dharwad.* (Unpublished)

Salagame, K.K.K (2008). Indian thought and traditions: A psycho-historical perspective. In K.R.Rao, A.C.Paranjpe, &A.K.Dalal (Eds.), *Handbook of Indian Psychology.* New Delhi: Cambridge University Press of India Pvt. Ltd. Pp -19-52.

Salagame, K. K. K. (2011a). Indian indigenous perspectives and concepts: Developments and future possibilities. In G. Misra (Ed.), *Psychology in India Volume IV: Theoretical and Methodological Developments* (pp. 93-172). New Delhi: Pearson Education.

Salagame, K. K. K. (2011b). *Psychology of yoga and yoga psychology.*In P. Nikic (Ed), Proceedings "Yoga – the light of micro universe" of the international interdisciplinary scientific conference. Yoga in science – future and perspectives. September 23-24-2010, Belgrade: Yoga federation of Serbia pp 41-55.

Salagame, K.K.K.(2013). IndianPsychology. In Ken Keith (Ed.). *TheEncyclopaediaofCross- CulturalPsychology.* New York: Wiley- Blackwell. Pp. 695

Salagame, K.K.K. (2018). Indian Psychology: Nature, Scope, and Application. In M. Y. Manjula & S.S.Konaje (Eds.). *Psychology; Existing trends and emerging fields.* Mangaluru: New United Publishers

Sinha, D. (1984). Psychology in the context of third world development. *International Journal of Psychology,* Special issue, *19*(1-2), 17-29.

Sinha, J. N. (1958). *Indian Psychology, volume 1- Cognition*. (2nd Ed.). New Delhi: Motilal Banarasi Das. (1996)

Sinha, J. N. (1961). *Indian Psychology, volume 2- Emotion and will.* (1st Ed.). New Delhi: Motilal Banarasi Das. (1996)

Sinha, J. N. (1968). *Indian Psychology, volume 3- Epistemology of perception.* (1st Ed.). New Delhi: Motilal Banarasi Das. (1996)

Smith, J.A., Harre, R. &Langenhove, L.V (1995a).*Rethinking psychology.*(Eds.) New Delhi: Sage

Smith, J.A., Harre, R. &Langenhove, L.V. (1995b).*Rethinking methods in psychology.* (Eds.) New Delhi: Sage Publications.

Tart, C. T. (1969). *Altered states of consciousness*. New York: Wiley.

Tart, C. T. (1975a). *Transpersonal psychologies*. San Francisco: Harper & Row

Vivekananda, S (2003). *The complete works of Swami Vivekananda, Vol.2*. Mayavati Memorial Edition. Kolkata. Advaita Ashrama

Walsh, R. (1980). The consciousness disciplines and the behavioural sciences. *American Journal of Psychiatry, 137*, 663-673.

7.12 अनुशंसित अध्ययन

Cornelissen, M., Misra, G., & Varma, S. (2011a). *Foundations of Indian Psychology: Theory.* New Delhi: Pearson Education. (Volume 1).

Cornelissen, M. Misra, G. & Varma, S. (2011b). *Foundations of Indian Psychology: Application.* New Delhi: Pearson Education. (Volume 2).

Misra, G and Mohanty A. K. (2002) (Eds.), *Perspectives on Indigenous Psychology* (PP. 79-108) New Delhi: Concept Publication Company.

Rao, K. R., Paranjpe, A.C. & Dalal, A. K. (Eds.) (2008). *Handbook of Indian Psychology*. New Delhi: Cambridge University Press of India.

Rao, K.R., &Paranjpe, A.C. (2016). *Psychology in the Indian tradition*. New Delhi: Springer.

Rao, S. K. R. (1962).*Development of psychological thought in India.*Mysore: Kavyalya Publishers

Safaya, R. (1975). *Indian psychology: A critical and historical analysis of the psychological speculations in Indian philosophical literature.* Delhi: MunshiramManoharlal Publishers Pvt. Ltd.

Salagame, K. K. K. (2011a). Indian indigenous perspectives and concepts: Developments and future possibilities. In G. Misra (Ed.), *Psychology in India Volume IV: Theoretical and Methodological Developments* (pp. 93-172). New Delhi: Pearson Education.

Srivastava, S. P. (2001).*Systematic survey of Indian Psychology*.Bahadurgarh, Haryana: AdhyatmaVijnanaPrakashan.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 भारतीय चिंतन में आत्म की संप्रत्यय*

संरचना

8.1 उद्देश्य

8.2 परिचय

8.3 पाश्चात्य मनोविज्ञान के अनुसार आत्म, पहचान एवं आत्म-संप्रत्यय

- 8.3.1 आत्म
- 8.3.2 पहचान
- 8.3.3 आत्म-संप्रत्यय

8.4 भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आत्म, पहचान एवं आत्म-संप्रत्यय

- 8.4.1 अध्यात्मिक शब्दावली
  - 8.4.1.1 आत्मन्
  - 8.4.1.2 पुरूष
  - 8.4.1.3 जीव
  - 8.4.1.4 आत्मन् एवं जीव - विभेदन
- 8.4.2 मनोवैज्ञानिक शब्दावली
  - 8.4.2.1 अहम् एवं अहंकार
  - 8.4.2.2 जीव के अनुभवों से संबंधित मनोवैज्ञानिक शब्दावली

8.5 भारतीय परम्पराओं के अनुसार आत्म एवं पहचान का विकास

8.6 भारतीय परिवार एवं संस्कृति के संबंध में आत्म की संप्रत्यय

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 स्व आकलन प्रश्नों के उत्तर

8.10 इकाई के अंत में प्रश्न

8.11 संदर्भ

8.12 अनुशंसित अध्ययन

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आप निम्नलिखित में सक्षम होंगे :

- आत्म, पहचान, एवं आत्म-संप्रत्यय के बीच अंतर समझने में,
- यह बताने में कि कैसे भारतीय आत्म-संप्रत्यय, पाश्चात्य आत्म-संप्रत्यय से अलग है,
- भारतीय मनोविज्ञान में विभिन्न आत्म-संबंधित संदर्भों को विशिष्ट अर्थ के साथ पहचानने में,
- यह जानने में कि भारतीय समाज में आत्म एवं पहचान का विकास किस प्रकार परिकलित किया जाता है, और
- भारतीय संप्रत्ययों की व्यापकता एवं गहराई के महत्व को समझना

*प्रोफेसर किरन कुमार के सालागामे, भूतपूर्व प्रोफेसर, मनोविज्ञान, मैसूर विश्वविद्यालय, कर्नाटक।

8.2 परिचय

यदि कोई अपने आपके बारे में सोचने एवं अपना वर्णन करने के लिए कहे, तब आप ऐसा किस प्रकार करेंगे? सामान्य रूप से आप अपना नाम, कार्य, लिंग, जाति, समुदाय, भाषा आदि बताएंगे। आत्म एवं पहचान से संबंधित प्रश्नों जैसे - 'आप कौन हैं', तथा 'मैं कौन हूं, का उत्तर सामान्य तौर से हमारे शरीर तथा आकार या दिखावट, नाम, संबंध, भौतिक संपत्ति, जाति, समुदाय, भाषा, धर्म, शैक्षिक उपलब्धि, पसंद एवं नापसंद, संवेगों, अभिप्रेरणाओं, मनदशाओं, अभिवृतियों, मूल्यों, उपलब्धियों तथा ऐसी अन्य चीजों से संबंधित होते हैं। इस प्रकार, वे जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ओयसरमैन, एल्मर तथा स्मिथ (2012) ने आधुनिक मनोविज्ञान में आत्म, आत्म-संप्रत्यय तथा पहचान पर लिखी गई सैंकड़ों प्रकाशित कार्यों का पुनर्मूल्यांकन किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इन संप्रत्ययों से संबंधित तीन मुख्य सिद्धांत नामतः मानसिक संरचनाएं (mental constructs) सामाजिक उत्पाद (social products) और क्रिया (force for action) हेतु बल हैं जिन पर विभिन्न सिद्धांत आधारित हैं। अपने पुनर्मूल्याकंन के आधार पर वे बताते हैं कि '' आत्म, आत्म-संप्रत्यय तथा पहचान ऐसी मानसिक संरचनाएं हैं जो उन संदर्भों द्वारा निर्मित होती हैं जिसमें वे विकसित होती हैं तथा कार्य को प्रभावित करती हैं।'' (पृष्ठ 75)। चूंकि हम सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में विकसित होत और बढ़ते हैं अतः सामाजिक संस्थाएं जैसे - परिवार, समुदाय, जाति, धर्म, औपचारिक शिक्षा, विवाह आदि हमारी पहचान एवं आत्म-संप्रत्यय के विकास में महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

पिछली इकाई में हमने परिचर्चा की है कि लोगों का दुनिया को देखने का नजरिया (वैषिक दृष्टिकोण) और इससे अर्जित धारणाएं अलग-अलग संस्कृतियों में भिन्न होते हैं। इस प्रकार, हम जिस परिस्थिति में विकसित होते हैं और बढ़ते हैं, वह भी भिन्न-भिन्न होती है। भारतीय दृष्टिकोण चूंकि मानव अस्तित्व के आध्यात्मिक आयाम की पुष्टि करता है, अतः इसके अंतर्गत विकसित हुई हमारी संस्कृति एवं सामाजिक संस्थाएं पाश्चात्य की तुलना में गुणात्मक रूप से भिन्न हैं जो भौतिक दृष्टिकोण कायम करता हैं। अनेक विभिन्नताओं में सर्वाधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंतर चेतना के बारे में है। हम पहले ही जान चुके हैं कि पाश्चात्य दृष्टिकोण सभी मानवीय अनुभवों को सामान्य जाग्रत अवस्था, स्वप्नावस्था, तथा सुप्तावस्था में होने वाले अनुभवों तक सीमित रखता है। इसकी तुलना में, भारतीय दृष्टिकोण एक चौथा अनुभव तुरीय (turiya) जोड़ता है जिसका अभिप्राय है - 'अतींद्रिय चेतना' या 'विशुद्ध चेतना'। इस कारण, भारत में आत्म से संबंधित संप्रत्ययों जैव-मनो-सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ आध्यात्मिक क्षेत्र से भी संबंधित हैं।

इस इकाई में आप आत्म एवं पहचान की भारतीय संप्रत्ययओं के बारे में जानेंगे तथा यह भी जानेंगे, वे किस प्रकार से हमारे जीवन को गढ़ते हैं और इनके चलते हम दैनिक जीवन में किस प्रकार से कार्य एवं प्रतिक्रिया करते हैं।

8.3 पाश्चात्य मनोविज्ञान के अनुसार आत्म, पहचान एवं आत्म. संप्रत्यय

भारतीय अवधारणाओं को आंकने के लिए यह लाभप्रद होगा कि आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार आत्म एवं पहचान के बारे में पहले सीखें।

8.3.1 आत्म

स्मकालीन मनोवैज्ञानिक साहित्य में हम बार-बार उन शब्दावलियों का प्रयोग करते हैं जिनमें 'आत्म' शब्द 'उपसर्ग' के रूप में प्रयोग किया जाता है जैसे 'आत्म-सिद्धि', 'आत्म-विश्लेषण', 'आत्म-विश्वास', 'आत्म-सक्षमता', 'आत्म-सम्मान', 'आत्म-मूल्यांकन', आत्म-धारणा', 'आत्म-संप्रव्यय', 'आत्म-विकाश', 'आत्म-जागरूकता', 'आत्म-बोध' आदि। इसके अलावा, हमारे पास अन्य संप्रत्ययों एवं प्रसंग हैं जो आत्म को 'पहचान विकास', 'पहचान संरचना', अहं', 'अहं-विकास', 'अहं-ताकत', 'अहं-सीमाएं', 'अहं-रक्षा युक्तियां', 'वैयक्तिकरण', 'विशेषक', 'भूमिका व्यवहार' तथा इस प्रकार के अन्य से संबंधित हैं। सिगमंड फ्रायड ने 'विकास के मनो-लैंगिक अवस्थाओं' को प्रस्तावित किया है तथा एरिक एरिक्सन ने 'विकास की मनो सामाजिक सिद्धांत' को प्रस्तावित किया है। हालांकि, ऑक्सफोर्ड डिक्षनरी ऑफ साइकोलॉजी (कोलमैन, 2009) 'आत्म' शब्द को अलग से नहीं प्रस्तुत करती हैं तथा इसका विशिष्ट अर्थ या परिभाषा नहीं देती है।

यह पाया गया है कि सामान्य बातचीत में 'आत्म' शब्द एक गर्मजोशी के भाव या एक गर्मजोशी की भावना से संबंधित है कि कोई चीज 'मेरे बारे'' या ''हमारे बारे'' में है जो कि विभिन्न भावों से संबंधित ''आत्म-भावनाएं'' या ''आत्म-प्रतिमान'' हैं - भाव जो वे महसूस करते हैं, चतुराई से महसूस करने का भाव, उनके शरीर की गति की भाव।'' विलियम जेम्स का आत्म की प्रारंभिक परिकल्पना इन्हीं पहलुओं से संबंधित है परन्तु आधुनिक मनोविज्ञान में इन्हें बहुत कम आनुभाविक अवधान (empirical attention) मिला (ओयसरमैन, एल्भर एंड स्मिथ, 2012, पृ. 69)।

स्वयं के बारे में महसूस करने के अलावा, हम स्वयं के बारे में चिंतन भी करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह कोई दार्शनिक हो या नहीं, कभी न कभी वह अपने आत्म के बारे में चिंतन करता है। इसमें एक 'मैं' की आवश्यकता होती है जो 'मेरे' बारे में एक 'अन्य' की तरह या एक पदार्थ के रूप में चिंतन करता है। अर्थात आत्म शब्द 'विचारक' तथा 'विचाराधीन पदार्थ' को शामिल करता है। एक ऐसा विषय जो केवल सोचने में ही सक्षम नहीं होता बल्कि ऐसा करने के प्रति जागरूक भी रहता है, जैसा कि प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक रेने डेसकार्टस ने कहा - ''(cogito ergo sum'' - ''मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं।'' इस प्रक्रिया में चिंतन, चिंतन के प्रति सजग रहना तथा स्वयं को चिंतन के लिए एक विषय के रूप में लेना शामिल है तथा इसे ''चिंतनशील क्षमता'' कहा गया है। आत्म के समकालीन सिद्धांत ''मैं'' और ''मेरे'' के बीच में भेद नहीं करते है। बल्कि इसके बजाय तीनों पहलुओं को एक साथ समझते हैं। (ओयसरमैन, एल्भर एंड स्मिथ, 2012, पृ. 71)

8.3.2 पहचान

एक अन्य महत्वपूर्ण संप्रत्यय पहचान है। आत्म एवं पहचान शब्द साहित्य में प्रायः अदल बदलकर प्रयोग किए जाते हैं। फ्रायडवादी मनोविश्लेषक एरिक एरिक्सन (1951, 1968) ने एक व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले सिद्धांत का प्रस्ताव किया जिसने अन्वेषण एवं प्रतिबद्धता के द्वारा पहचान के विकास पर ध्यान केंद्रित किया। उसने फ्रायड के काम इच्छा (sexual urges) की तुलना में अपने तर्क को उन सामाजिक कारकों तक आगे बढ़ाया जो किसी व्यक्ति के विकास को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार, एरिक्सन के दृष्टिकोण को 'मनोसामाजिक' के रूप में जाना जाता है तथा फ्रायड के सिद्धांत को 'मनोलैंगिक' के रूप में जाना जाता है। एरिक्सन ने 'पहचान' (identity) शब्द का प्रयोग किया है जिसके लिए अन्य लोगों ने आत्म-संप्रत्यय (self-cencept) शब्द का प्रयोग किया है।

हालांकि, ओयसरमैन, एल्मर तथा स्मिथ (2012) का मत है कि पहचान शब्द की संप्रत्यय कुछ पहलुओं से भाव निकालने या आत्म-संप्रत्यय के भाग के रूप में की जा सकती है। उदाहरणार्थ, किसी एक व्यक्ति की धार्मिक पहचान हो सकती है जिसमें संबंधित विषयवस्तु एवं उद्देश्य निहित होता है, जैसे कि क्या करना है, किसे महत्व देना है तथा किस प्रकार से व्यवहार करना है। वे रेखांकित करते हैं कि हमारे पास केवल एक पहचान नहीं है। बल्कि इसके विपरीत हमारी कई पहचानें हैं। उनके अनुसार ''पहचान विशेषक हैं तथा विशेषताएं, सामाजिक संबंध, भूमिकाएं एवं सामाजिक समूह सदस्यता से परिभाषित होती हैं जो सूचित करता है कि व्यक्ति कौन है।'' (पृ. 69)।

वे यह भी ध्यान देते हैं कि आत्म एवं पहचान दोनों शब्द दो महत्वपूर्ण तरीके से प्रयोग किए जाते हैं। पहला ''इस प्रक्रिया के संदर्भ में लोगों को यह महसूस कराने में कि 'मेरे' लिए क्या महत्वपूर्ण है या आत्म के बारे में अनेक आस्थाओं एवं अवधारणाओं पर आधारित सामाजिक संबंधों के परिणाम या सामान्य रूप से सामाजिक जनसांख्यिकीय श्रेणियों जैसे कि लिंग या सामाजिक वर्ग से संबंधित है ...' (ibid, p. 74) दूसरा - 'अंतर्निहित भाव या आप्रसंगिकता एवं बहिश्करण की उदासीन भावना के बजाय प्रासंगिकता एवं समावेशन की जीवंत भावना' ....'' (ibid, p. 74)।

पहचान के सामाजिक मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत 'व्यक्तिगत, सामाजिक तथा भूमिका पहचान' में भेद करते हैं। ''व्यक्तिगत पहचाने'' (Personal identities) ऐसे विशेषकों या विशेषताओं को दर्शाती हैं जिन्हें व्यक्ति की सामाजिक एवं भूमिका पहचानों से अलग महसूस किया जा सकता है या इन पहचानों में से कुछ या सभी से संबद्ध किया जा सकता है – इस प्रकार, व्यक्तिगत पहचानें विषयवस्तु की तुलना से संबंधित हैं जिसे मनोविज्ञान साहित्य में प्रारूपिक रूप से आत्म-संप्रत्यय के रूप में संदर्भित किया जाता है।'' (ओयसरमैन, एल्मर एंड स्मिथ, 2012, पृ. 74)

ताजफेल (Tajfel) के अनुसार ''सामाजिक पहचानों'' (social identities) में व्यक्ति के किसी समूह का सदस्य होने, समूह सदस्यता के बारे में व्यक्ति की भावनाएं, तथा अन्य समूहों की तुलना में उस समूह के स्तर और स्थिति का ज्ञान शामिल है। यद्यपि यह परिभाषा ज्ञान, सम्मान तथा स्थिति, के अलावा समूह सदस्यता की विषय वस्तु पर अधिक ध्यान नहीं देती है, अन्य परिभाषाओं ने उल्लेख किया है कि सामाजिक पहचानें विषयवस्तु को शामिल करती हैं। (ओयसरमैन, एल्सर एंड स्मिथ, 2012, पृ. 74)।

''भूमिका पहचानें'' (role identities) सदस्य को एक विशेष भूमिका में दर्शाती हैं (जैसे - विद्यार्थी, माता-पिता, व्यवसायी) जिसमें यह पूरक भूमिका (complementary) निभाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता होती हैं। एक व्यक्ति बिना बच्चे के माता-पिता, बिना अध्यापक के विद्यार्थी या बिना ग्राहक या समकक्षी साथी के एक व्यवसायी नहीं बन सकता है, जो एक व्यक्ति की भूमिका को मान्यता देते हैं। (ओयसरमैन, एल्सर एंड स्मिथ, 2012, पृ. 74)

8.3.3 आत्म-संप्रत्यय

ओयसरमैन एंड मार्कस के अनुसार आत्म-संप्रत्ययें संज्ञानात्मक संरचनाएं है। वे विषयवस्तु, गुण या मूल्यांकनात्मक निर्णयों को शामिल कर सकती हैं। जैसा कि आप भाग 8.3.1 में पहले पढ़ चुके हो, आत्म के पास 'मैं' और 'मुझे' घटकों के रूप में प्रविवर्त (reflexive capacity) क्षमता है। यह ''मैं'' है जो सोचता है और ''मुझे'' उन विचारों का विषय वस्तु है। इस 'मुझे' विषयवस्तु का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानसिक संप्रत्ययों एवं मतों को शामिल

करता है कि वह कौन है, कौन था और कौन होगा। ये मानसिक संप्रत्ययों आत्म-संप्रत्यय की विषयवस्तु हैं। जैसाकि ये अवधारणाएं एक साथ हमारी सारे पहचान के बारे में हैं, वे व्यक्ति की आत्म-संप्रत्यय को निर्मित करती हैं। आत्म-संप्रत्यय को अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है, ''जैसा कि जब कोई व्यक्ति अपने बारे में सोचता है तब दिमाग में क्या आता है, व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में उसका सिद्धांत तथा जो वह विश्वास करता है कि वह उसके बारे में सच है'' (ओयसरमैन, एल्मर एंड स्मिथ, 2012, पृ. 69)। वे दुनिया को समझना, अपने उद्देश्यों पर ध्यान केंन्द्रित करने तथा अपनी आधारभूत उपयोगिता (basic worth) के भाव को सुरक्षित रखने में सक्षम होते हैं।

इस प्रकार, प्राचीन दार्शनिक प्रश्न कि ''मैं कौन हूँ' (कोहम्, संस्कृत भाषा में) तथा 'तुम कौन हो' (खस्त्वम्, संस्कृत भाषा में) आत्म, पहचान एवं आत्म-संप्रत्यय से संबंधित है।

स्व आकलन प्रश्न 1

1) मनोवैज्ञानिक आत्म शब्द का वर्णन किस प्रकार से करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) तीन प्रकार की पहचानें क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) आत्म-संप्रत्यय क्या है?

.....

.....

.....

.....

8.4 भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आत्म पहचान एवं आत्म-संप्रत्यय

जब हम आत्म के सिद्धांत के बारे में विचार करते हैं तब हम पाते हैं कि हमारी संस्कृति में भी विचारकों ने आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की तरह से ही आत्म से संबंधित विचारों को परिभाषित तथा चिह्नित किया है। हालांकि मुख्य अंतर हमारी संस्कृति के आध्यात्मिक

दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न होता है। इसी पृष्ठभूमि में हमें आत्म से संबंधित संप्रत्यय एवं सिद्धांतों को समझना होगा (सैलगामे, 2011 ए)। भारतीय मनोविज्ञान में हम आत्म से संबंधित दो प्रकार के शब्दों को चिह्नित कर सकते हैं: (1) वे जो हमारे आध्यात्मिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं जैसे - आत्मन्, पुरूष, जीव, जीवात्मन् और इस तरह के अन्य तथा (2) वे जो वैचारिक हैं जैसे अहम्, अहंकार, अहंभाव, अभिमान एवं अस्मिता।

8.4.1 आध्यात्मिक शब्द

आध्यात्मिक पहलू से संबंधित विभिन्न प्रकार के शब्द हैं। शब्दों का पहला समूह उससे संबंधित है जो वास्तविक एवं अस्तित्व में है। यह न कल्पना है और न ही वैचारिक है। भारतीय संस्कृति देह तथा जीव में अंतर करती है और स्वीकार करती है कि दोनों सत्ता के रूप में अस्तित्व में हैं। यही कारण है कि जब किसी की मृत्यु होती है, तब शरीर को निर्जीव सत्ता के रूप में देखा जाता है, वहीं पर ''*जीव*'' को सजीव सत्ता के रूप में समझा जाता है। इसलिए, '*श्राद्ध कर्म*' जो कि मृत्यु के पश्चात् किया जाता है, उसके दो भाग होते हैं। एक मृत शरीर के अंत्येष्टि क्रिया से पहले किया जाता है। दूसरा जीव के लिए ताकि उसकी यात्रा निर्बाध रूप से चलती रहे। शारीरिक एवं आध्यात्मिक रूप से यह अंतर भारतीय मनोविज्ञान एवं आध्यात्मिकता का मुख्य केंद्र है। अतः, हमें संप्रत्ययओं के दोनों समूहों को समझने की आवश्यकता होती है।

8.4.1.1 आत्मन् (Atman)

आत्म की अभिव्यक्ति करने के लिए आत्मन् शब्द का प्रयोग बार-बार किया जाता है। बहुत से लोग आत्म-साक्षात्कार (self-realization), आत्म-ज्ञान (self-knowledge), आत्म-स्थैर्य (self-determination/grit), आत्माभिमान (self-respect), आत्म-समर्पण (self-surrender) और इस प्रकार के अन्य शब्दों के प्रयोग से परिचित हैं। इसमें से आत्म-साक्षात्कार एवं आत्मज्ञान सामान्यतया आध्यात्मिक अनुभव से संबंधित है तथा इस शब्द को आत्मा और आत्मन् के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस शब्द का ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्व वेद में ज्यादातर प्रयोग किया गया है। वेदों में इस शब्द की प्रारंभिक उपयोगों के तुलना में बाद में उपनिषदों में इसके प्रयोग किए गए अर्थों में बदलाव आया है।

इस शब्द की उत्पत्ति एवं विकास का पता लगाते हुए एस. के. रामचंद्र राव (1962) लिखते हैं कि आत्मन् शब्द की उत्पति अस्पष्ट है, यद्यपि आत्मन् शब्द के समान एक ग्रीक शब्द अट्मोस (atmos)' है जिसका अर्थ है 'धुआं', 'बुलबुला'। वे राय देते हैं कि वेदों में प्रयुक्त आत्मन् शब्द प्राण या आसु (asu) के लिए वैकल्पिक अभिव्यक्ति हो सकता है, ये दोनों जीवन का संकेत करते हैं, पहला वास्तविक महत्वपूर्ण प्रक्रिया को परिलक्षित करता है तथा दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत के बारे में बताता है। एस. के. आर. राव के मानना है कि आत्मन् शब्द परिस्थितियों के अनुसार अपनी विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत करता है। उदाहरणार्थ - वेदों के टीकाकार सायन (Sayana) इसकी उत्पति 'an' के मूल से लेते हैं जो सांस लेने की प्रक्रिया को दर्शाता है तथा वोपादेव (Vopadeva) के अनुसार यह गति या कार्य को दर्शाता है। यह रूझान इस व्याख्या की तरफ ले जाता है कि आत्मन्, सांस लेने का एक गतिशील सिद्धांत है।

दूसरी तरफ, निरूक्त (Nirukta) (ज्ञान की शाखा जो संस्कृत शब्दों के अर्थ विज्ञान से संबंधित है) 'at' के मूल पर महत्व देते हैं जिसका अर्थ है - 'फैलाव', 'विस्तार', 'व्याप्त होना', 'भरना'। राव आगे प्रस्तुत करते हैं कि शब्द का प्रस्तावित समापन आधुनिक विद्वानों को इसमें 'अन्' (an) जोड़ देने से आकर्शित करता है जो इसमें एक नामकरण (nomina

actionis) प्रस्तुत करता है। अभिव्यक्ति का महत्व इसमें कार्य के लिए आत्मा की क्षमता के संकेत में हैं'' (1962, पृ. 6) सैलगामे, 2008)।

सांस लेने, गतिशील, कार्य, व्यापकता, भरने तथा सजीवन के रूझान के रूप में प्रस्तावित एक प्रमुख या आवश्यक महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में आत्मन् को समझना विलियम जेम्स की आत्म परिकल्पना के समानांतर प्रतीत होता है। शरीर एवं एक सिद्धांत के बीच यह प्राचीन अंतर या भेटं जो कार्य एवं गतिविधि के लिए जिम्मेदार है, सामान्य रूप से पूरी दुनिया में पाई जाती है। हालांकि आधुनिक मनोविज्ञान ने इस अलग सिद्धांत को त्याग दिया, फिर भी भारतीय मनोविज्ञान में इसने प्रमुख स्थान ग्रहण किया है। दार्शनिक आनंदगिरी ने आत्मन् की प्रमुखता का संरलेशणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो वैदिक काल में प्रारंभिक रूप से प्रचलित था। रामचंद्र राव इसे संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हैं, यथा ''आत्मन्, (शरीर को) भरता है, (बाहरी संसार से प्रभाव) प्राप्त करता है, तथा प्रस्तुत योग्य पदार्थों का आनंद उठाता है, अनुभव करता है (1962, पृ. 6)। एक प्रारंभिक उपनिषद में सभी मानसिक क्रियाओं को आत्मन् के केवल संशोधन के रूप में समझा गयाहै (ऐतरेय (Aitareya) उपनिषद, भाग III, श्लोक - 1-4), (सैलगामे, इट अल, 2005, 2008)।

8.4.1.2 पुरूष (Purusha)

इसी प्रकार से *पुरूष* शब्द भी आध्यात्मिक भाव तथा साथ ही साथ जैव-मनो-समाजिक भाव में भी प्रयोग किया जाता है। पहले भाव में, यह *प्रकृति* (Prakrti) के साथ-साथ इस संसार के एक मूलभूत सिद्धांत को प्रस्तुत करता है जैसा कि सांख्य प्रथा में बताया गया है। यहाँ पर यह सचेतन (consciousness) के सिद्धांत को प्रस्तुत करता है एवं प्रकृति (Prakrti), त्रिगुण - सत्व, रजस, एवं तमस् से निर्मित भौतिकत्व के सिद्धांत को प्रस्तुत करता है। जब इसे जैव-मनो-सामाजिक भाव में उपयोग किया जाता है, तब यह लिंग हीन (gender neutral) के भाव में 'व्यक्ति' को प्रस्तुत करता है तथा व्यक्ति को आत्म या आत्मा के रूप में बताता है। हालांकि, समय के साथ, सामान्य बातचीत में इस शब्द का प्रयोग जन सामान्य के द्वारा पुल्लिंग के लिए उपयोग किया जाता है। सचेतन का सिद्धांत सभी मानव में निहित है तथा सांख्य प्रथा के अनुसार इसे समझना अस्तित्व का अंतिम उद्देश्य है।

8.4.1.3 जीव (Jiva)

जीव 'निर्जीव' के विपरीत, जीवन को सूचित करता है। यह अंतर सजीवन एवं निर्जीवन के समान है। इसमें शक्ति, गतिशीलता तथा कार्य का निहितार्थ है जिन्हें प्राण या जीवन सिद्धांत से लिया गया हैं। यह जीव ही है जिसका भौतिक शरीर से जाना माना जाता है तथा इसे मृत्यु कहा जाता है। जीव 'आत्मा' के समान है तथा यह कहना सामान्य है कि 'इसने' शरीर छोड़ दिया है। यह तटस्थ लिंग (gender neutral) है। भगवद् गीता में, कृष्ण मृत्यु की तुलना एक साधारण घटना जैसे पुराने कपड़े को उतारने से करते हैं। वे कहते है कि जैसे एक व्यक्ति अपने पुराने कपड़े को उतारकर नए वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार शरीर में स्थित व्यक्ति ('देही') पुराने भौतिक शरीर ('देह') को त्यागकर एक नया शरीर धारण करता है (अध्याय 2, श्लोक, 22) और वे यह स्पष्ट करते हैं कि यह जीव है जो बार-बार जन्म लेता है। आदि शंकराचार्य के एक प्रमुख शिष्य पद्मपाद ने जीव के अनुकूलित अस्तित्व का वर्णन किया है। सफाया (1976, पृ. 213) के द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपांतरण नीचे प्रस्तुत किया गया है।

''और वह जीव ''यह नहीं'' की प्रकृति का जागृत एवं स्वप्न अवस्था में अहं के रूप में अनुकूलित किया गया है तथा अविद्या के द्वारा नींद में अनुकूलित है जिसमें इसके प्रभाव की खोज निहित है (यह कि आंतरिक भाव पीछे छूट गया है) जो कि ज्ञान के विपरीत है

तथा जो प्रकाश (आत्मा) को बाधा डालता है - आगे - पीछे आता जाता रहता है जिसे श्रुति एवं स्मृति में सामान्य रूप में संसार, जीव, विज्ञानाधन, विज्ञानात्मा, प्रज्ञा, सटीटी, सटीरः आत्मा, सम्प्रसाध, पुरूष, प्रत्यागात्मा, कर्ता, भोक्ता तथा क्षेत्र कहा गया है (पद्मपाद की पंचपादिका XXXIV 135, पृ. 100-101)''।

जीव के विभिन्न अवस्था के वर्णन के लिए पद्मवाद द्वारा प्रयोग किए गए शब्दों के विशेष अर्थ के लिए भाग 8.4.2.2 में तालिका देखें। जैन विचारक बताते हैं कि इस संसार में प्रत्येक वस्तु या तो जीव (आत्मा) है जो परमानन्द, शक्ति तथा अनंत सचेतन का प्रतीक है या अजीव (ajiva) जिसमें सब कुछ अचेतन है। सभी चेतन आत्माएं (जीव) हैं'' जो कि एक भौतिक (अजीव) शरीर में बंधी हैं, इन दोनों की पारस्परिक क्रिया का परिणामा।'' जीव में वनस्पति, पशु तथा मानव शामिल है। अजीव, पदार्थ, स्थान, समय, गति के माध्यम तथा 'विश्राम के माध्यम' से संबंधित है। इन दोनों को न तो बनाया जा सकता है, न मिटाया जा सकता है तथा वे सनातन है। हालांकि, उनकी आपसी पारस्परिक क्रिया उनके स्वरूप को बदल सकती है (पारिख, 2006, पृ. 8)। जीव को एक व्यक्ति में प्राण के रूप में समझा जाता है जो बाद में घटनीय अनुभव के आनुभाविक आत्म/कर्ता के अर्थ में होता है।

8.4.1.4 आत्मन् एवं जीव - विभेदन

यद्यपि आत्मन् एवं जीव दोनों जीवन के सिद्धांत के साथ संबंधित हैं फिर भी प्रारंभिक वैदिक साहित्य में, जैसे जैसे आत्मा के बारे में परिचर्चा वैदिक काल से लेकर उपनिषद काल तक बढ़ती गई, इन दोनों शब्दों ने विभिन्न प्रकार के अर्थ एवं महत्व को प्राप्त किया। एक तरफ जीव ने एक आनुभविक सत्ता का प्रतिनिधित्व किया जो तीन अवस्थाओं में अनुभवों से गुजरती है तथा एक जीवन के बाद दूसरे जीवन में भी गुजरता है, वहीं आत्मन् ने आध्यात्मिक मूल प्रस्तुत किया।

आत्मन् को एक आंतरिक तत्व समझा जाता है जो कि सभी प्राणियों के लिए समान है। तथा इसे ब्रह्मन् (Brahman) के समान जाना जाता है जो उपनिषदों में संसार के मूलभूत सिद्धांत के रूप में है। यह जागरूकता एवं शक्ति दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। मांडूक्य उपनिषद् आत्मन् की एक संक्षिप्त परिभाषा प्रस्तुत करता है तथा ज्ञानातीत (transcendent) प्रकृति पर बल देता है।

''चौथा (तुरीय) के बारे में बुद्धिमान लोग कहते हैं कि यह आंतरिक या बाह्य रूप से संज्ञानात्मक नहीं है, दोनों तरफ से संज्ञानात्मक नहीं है और न ही यह संज्ञान का एक अनिश्चित पुंज है, न सामूहिक संज्ञान है, न असंज्ञान है। यह अनदेखा, असंबद्ध, अग्रहणकीय, अतर्कनीय, अकल्पनीय तथा अवर्णनीय है। यह आत्म-संज्ञान का मूलतत्व है जो कि सचेतन की सभी अवस्थाओं के लिए समान है। सभी घटनाओं का कारण यह है। यह शांति है, यह आनंद है, यह अद्वैत है। यह आत्म है तथा इसे समझना है।'' (एम यू, 7, अनुवाद-स्वामी सर्वानंद, 1976)।''

यहाँ पर 'तुरीय' को जागरूकता के 'आधार' (ground) बताया गया है जिस पर तथा आकृति (Figure) के रूप में 'कर्ता-कर्म/आत्म-अन्य' द्वैत भाव होते हैं। जागृतावस्था, स्वप्न, गहरी नींद तथा अन्य अनुभव घटित होते हैं। इसे 'विशुद्ध सचेतन' तथा 'विशुद्ध जागरूकता' के रूप में भी जाना जाता है। जबकि तीनों अवस्थाओं को विशेष नाम दिए गए हैं – 'जागृत' (जागना), 'स्वप्न' तथा 'सुशुप्ति', वहीं पर जागरूकता के इस आधार को 'चतुर्थ' - संस्कृत में 'तुरीय' कहा जाता है। यह ध्यान देना है कि यह अलग विशेषताओं के साथ एक अन्य अवस्था नहीं है। इसे एक आत्म-संज्ञान के मूलतत्व के रूप में समझा जाता है जो कि सभी

अवस्थाओं के लिए समान है। यह ज्ञानातीत आत्म है जिसकी सिद्धि को प्राप्त करना होता है - 'स आत्मा स विज्ञेयहा'।

मांडूक्य उपनिषद् आत्म के भाव को प्रस्तुत करने के लिए तीन शब्दों का प्रयोग करता है तथा उन्हें तीन अवस्थाओं के साथ संबद्ध करता है - 'विस्व' या 'वैष्वानर', 'तैजस्' तथा प्रज्ञा। दूसरी तरफ आत्मन् सहजन भाव में आत्मा को प्रस्तुत करता है जो एक व्यक्ति के अस्तित्व की निरन्तरता की भावना, प्रदान करता है और जो सभी प्रकार के संज्ञान से परे है (सफाया, 1976)। अतः, यह जीव है जिसे *विस्व, तैजस* तथा *प्रज्ञा* के रूप में बताया गया है जिसे जागृत, स्वप्न और गहन निंद्रा भी कहते हैं।

आत्म की प्रकृति के बारे में ज्यादातर परिचर्चा उपनिषदों में हुई है। उनमें से बहुत से विचारों को बाद में दर्शन में विकसित किया गया - भारतीय दर्शन की प्रणाली जो भारतीय मनोविज्ञान को स्थापित करने में मुख्य साधन हैं। आत्म और आत्म-विहीन के विश्लेषण में भारतीय विचारक सामान्य लोगों से काफी आगे बढ़े। उन्होंने घोषणा की कि सामान्य रूप से समझा गया जागृत, विस्व या वैष्वानर का आत्म आत्म-विहीन भी है तथा दावा किया कि केवल वास्तविक आत्म जो 'आधारभूत जागरूकता' (ground awareness) है वहीं आत्मन् हैं। ऋषियों ने सभी घटनीय अनुभवों के लिए जीव या देहिन् को जिम्मेदार ठहराया तथा आत्मन् को 'अनुभव-रहित' के रूप में बताया चूंकि अनुभव शब्द सामान्य रूप से एक आधुनिक कर्ता से संबंधित समझा जाता है। उन्होंने 'अनुभव' के बजाय 'अनुभूति' शब्द का प्रयोग किया जो घटनीय अनुभव से संबंधित है। इसलिए, उन्होंने जीव से आत्म-भाव को अलग करने पर जोर दिया। आत्म की सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति के बीच इस अंतर को समझते हुए तथा आध्यात्मिक प्रकृति को प्राप्त करते हुए, आत्म साक्षात्कार को मानव जीवन के सर्वोकृष्ट उद्देश्य के रूप में समझा जाता है जिसकी परिणति मोक्ष के रूप में होती है तथा जिसे परम पुरूषार्थ समझा गया है (सेलगामे, 2005)।

भारतीय चितंन की पुरातन परंपरा तथा बौद्ध धर्म के बीच विवाद का मूल यह है कि क्या अनुभव रहित आत्मन् वास्तव में है या नहीं। बौद्व इस संभावना अर्थात् मूल अभिज्ञता या आत्म् को स्वीकार नहीं करते हैं। यह एक आलोचनात्मक, विवादास्पद मुद्दा है जिसका समाधान मनोवैज्ञानिकों को भविष्य में होने वाले शोधों में करना होगा।

8.4.2 मनोवैज्ञानिक शब्दावली

भारतीय प्रथाएं मनोवैज्ञानिक प्रकृति के कुछ शब्दों का प्रयोग करती हैं जो आत्म एवं पहचान से संबंधित है। इनमें से *अहम्, अंहकार, ममकार, अहिंसा* तथा *अस्मिता* महत्वपूर्ण हैं तथा सामान्यता बहुत बार उपयोग किए जाते हैं। अहम् शब्द से अभिप्राय है 'मैं' तथा हम इसे अपने बारे में बताने के लिए उपसर्ग के रूप में उपयोग कर सकते हैं जैसे 'मैं इस तरह का हूं'। अहंकार का अर्थ वास्तव में 'कर्तृत्व का भाव' होता है, जैसेकि एक व्यक्ति जो कार्य करता है, आनंद उठाता है तथा दुःख झेलता है। ममकार 'मुझे' की भावना है। अभिमान 'भागीदारी एवं पहचान की भावना' है। अस्मिता हमारी 'पहचान' से संबंधित है जो व्यक्गित, सामाजिक या भूमिका पहचान हो सकती है।

8.4.2.1 अहम् एवं अहंकार (Aham and Ahamkara)

'*अहंकार*' शब्द संस्कृत शब्द अहम् से व्युतपन्न है जो अंग्रेजी भाषा के ''मैं'' शब्द के समान है। इसलिए, इस प्रश्न में कि 'मैं कौन हूं', 'कोहम्', प्रश्नकर्ता अहम् की वास्तविक प्रकृति के बारे में अभिरूचि दिखा रहा है। हम स्वयं के बारे में अनेक प्रकार से सोच सकते हैं।

उदाहरणार्थ, उपनिषदों में कहा गया है - *अहं ब्रहमास्मि,* मैं ब्रहमन् हूँ। एक व्यक्ति यह भी कह सकता है कि - अहम् पुरूषः अहम् जीव, तथा अहम् भोक्ता और इस तरह से अन्य। जब कोई व्यक्ति ब्रहमन् के बारे में बात करता है तो इसका मतलब है कि वह ब्रहमांड में समाहित हो गया है। जब व्यक्ति आत्मन् या पुरूष के बारे में बात करता है तब वह विशुद्ध सचेतन के स्तर पर मैं का अनुभव करता है। जब व्यक्ति जीव के बारे में बात करता है तो वह जीवन और मृत्यु के चक्र से गुजरते हुए एक सत्ता के रूप में मैं के बारे में बात कर रहा है। जब व्यक्ति भोक्ता (Bhokta-experiencer) के बारे में बात करता है तो वह मानसिक स्तर पर, मैं के बारे में बात कर रहा है। इन्हें सत्तामूलक, अतींद्रिय, आनुभाविक तथा मनोवैज्ञानिक श्रेणियों के रूप में समझा जा सकता है। अतः मैं या अहम् की भावना लोगों को किसी भी स्तर पर आ सकती है तथा इनमें अत्यधिक वैयक्तिक विभिन्नताएं हैं (सैलगामे एवं सहयोगी, 2005, सैलगामे, 2011 b)।

अद्वैत वेदान्त में, यह भावना कि ''मैं कर्त्ता हूँ'' (अहम् कर्त्ता) को अहंकार के रूप में परिभाषित किया गया है। कर्त्ता की यह भावना या ''अभिकर्तृत्व की भावना'' अहंकार के प्रमुख लक्षण में से एक है। अतः, इसे मानसिक प्रकार्य के रूप में समझा जाता है। अहंकार, मैं की भावना चार विभिन्न तरीकों से प्रकट होती है - कर्त्तृव्य की भावना, विभिन्नता/अंतर (मैं और तुम-द्वैत भाव), वैयक्तिकता (वैशिष्ट्य) तथा पहचान (अभिमान एवं संग)। ये अहंकार के चार कारक हैं (सैलगामे, 2005)।

8.4.2.2 जीव के अनुभवों से संबंधित मनोवैज्ञानिक शब्दावली

हम पहले ही देख चुके हैं कि भारतीय चिंतन के अनुसार जीव वास्तविक है। जीव को एक व्यक्ति के प्राण तत्व के रूप में ग्रहण किया गया है जो बाद में घटनीय अनुभव के आनुभाविक आत्म/कर्त्ता के रूप में आता है। यह जीव या देहिन है जो तीनों अवस्थाओं में सभी अनुभवों से गुजरता है और इस प्रकार हम सभी के द्वारा वास्तविक समझा जाता है। यह जीव है जो जीवन एवं मृत्यु तथा अनुकूलित अस्तित्व से गुजरता है और इसके अनेक कार्य होते हैं। हम पाते हैं कि उनको प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न शब्दों का उपयोग किया जाता है। उनकी एक सूची पदम्पाद ने भाग 8.4.1.3 में दी है जिसमें विभिन्न संदर्भों में प्रयोग करने के लिए विशेष अर्थ बताए गए हैं (तालिका को देखें)।

तालिका 8.1: जीव की विभिन्न दशाओं को वर्णन करने के लिए पदम्पाद द्वारा प्रयोग किए गए शब्दों के विशेष अर्थ

जीव-आत्मा	प्रत्यागात्मा - आत्म, ब्रहमन् के रूप में
पुरूष - मानव	प्रज्ञा - संज्ञान के रूप में आत्म
शरीरी - जिसने शरीर धारण किया है,	विज्ञानात्मा - विभेदक ज्ञान का मुख्य संचालन
शरीरह : वह साधन जिससे जीव इस संसार में कार्य करने के योग्य बनता है	विज्ञान धन - आध्यात्मिक आयाम के साथ विभेदक ज्ञान का अवतार
संसारी - भौतिक आनंद एवं कार्य में सहभागी होता है।	क्षेत्रज्ञ - क्षेत्र का जानकार
कर्त्ता - अभिकर्त्ता के रूप में आत्म	सम्प्रसाध - स्वप्न में उपस्थित आत्म - भाव
भोक्ता - अनुभवकर्ता/आनंदकर्ता/दुःख भोगने वाले के रूप में आत्म	

स्रोतः सैलगामे एवं सहयोगी, 2005

उपरोक्त सभी शब्द भारतीय प्रथायों में विभिन्न संदर्भों में विशेष परिष्करण के साथ प्रयोग किए गए हैं तथा ये आत्म एवं पहचान को समझने में हमें बेहतर अंर्तदृष्टि प्रदान करते हैं।

स्व आकलन प्रश्न 2

1) 'देह' एवं 'जीव' में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) आत्मन् एवं जीव के बारे में अंतर स्पष्ट कीजिए?

.....

.....

.....

.....

.....

3) अहम् एवं अहंकार को परिभाषित कीजिए?

.....

.....

.....

.....

.....

8.5 भारतीय परम्पराओं के अनुसार आत्म एवं पहचान का विकास

सामान्यतः एक सामान्य व्यक्ति की अपनी पहचान या आत्म-भाव की समझ उसके दैनिक अनुभवों से जुड़ी होती है। 'अनुभवकर्ता' या 'कर्ता' जो जागृत अवस्था के दौरान सभी अनुभवों में सहभागिता करता है, उसे वास्तविक आत्म के रूप में समझा जाता है। एक सामान्य व्यक्ति जागृत अवस्था के अपने दैनिक अनुभवों से परिभाषित करता है कि 'वह कौन है'। इसमें हमारा शरीर, हमारी मानसिक स्थिति, तथा हमारे सामाजिक संबंध शामिल होते हैं। अतः हम अपनी पहचान के भाग के रूप में जागृत अवस्था के अधिकांश अनुभवों को सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार, एक सामान्य व्यक्ति की पहचान जैव-मनो-सामाजिक है। साधारण शब्दों में, एक व्यक्ति की पहचान, वह अपने बारे में जो पहचानता है, उससे आती है। शरीर, पहचान के विकास के लिए एक आधार है क्योंकि इससे प्रारंभ करके हम स्वयं को भौतिक शरीर में किसी रूप में अनुभव करते हैं। लेकिन, जैसे, हम बड़े होते है, हम

अन्य चीजों की भी पहचान करते हैं - पदार्थ एवं गैर-पदार्थ और ये सभी हमारे पहचान के भाव से जुड़ जाते हैं। अतः हमारे पास अनेक पहचाने है न कि केवल एक पहचान।

एक सामान्य आदमी भी प्रायः जागृत अवस्था के विशिष्ट अनुभवों को 'मैं नहीं' के रूप में स्वीकार करता है तथा उनके साथ अपनी पहचान संबंद्ध नहीं करता है। हम सभी स्वप्न के अनुभवों को अपने आत्म के रूप में नहीं लेते हैं, यद्यपि स्वप्न के समय इसकी वास्तविकता जागृत अवस्था के अनुभवों से कम वास्तविक नहीं होती है। इसी तरह, अनेक प्रकार के अनुभवों को असाधारण या अलौकिक, रहस्यमय, धार्मिक या आध्यात्मिक के रूप में वर्गीकृत किया गया है। बहुत से लोग इन अनुभवों को दरकिनार करते हैं तथा इन्हें आत्म के हिस्से के रूप में नहीं समझते हैं।

फ्रायड, उसके सहयोगियों एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों ने, जिन्होंने भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाया, इन अनुभवों को अवास्तविक, मनगढ़त कल्पना, दुःस्वप्न, भ्रम, असुगम, प्रतिगामी, मनोविकारी तथा इस तरह के अन्य रूप में माना है। दूसरे शब्दों में, उन अनुभवों को 'आत्म-विहीन' के रूप में माना गया। इस प्रकार, एक व्यक्ति की प्रवषति जिस पहचान से संबद्ध होने की होती है, वह उसके आत्म का एक हिस्सा बन जाता है तथा जो कुछ वह अस्वीकार कर देता है, वह उसके आत्म का हिस्सा नहीं बन पाता है। अतः, एक सामान्य व्यक्ति की पहचान जागृत अवस्था में जैव-मनो-सामाजिक पहलुओं के अनुभव द्वारा सीमित है। अतः आत्म-विहीन में मानव अनुभवों को एक विस्तृत आयाम शामिल है (सैलगामे, 2005)। इस प्रकार पहचान एवं आत्म-भाव की अधिकांश आधुनिक मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययएं हमारे सामान्य जागृत अवस्था के अनुभवों से संबंधित तथा सीमित है।

इसकी तुलना में, भारत में हमारे पास कई शताब्दियों का इतिहास है जिसमें हजारों ऋृशियों, मुनियों, योगियों, सिद्धो, अवधूतों तथा इस प्रकार के अन्य असाधारण लोगों ने पुष्टि की और सुनिश्चित किया कि मानव अनुभव का क्षेत्र केवल जागृत अवस्था तक सीमित नहीं है। हम समय एवं स्थान की सीमाओं के परे जा सकते हैं तथा ऐसी घटना का अनुभव कर सकते हैं जो साधारण नहीं है। उन्होंने कई तकनीकें विकसित की है जिन सभी को सामान्य रूप से योग के अंतर्गत रखा जा सकता है। केवल अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने समझा है कि आत्म का जैव-मनो-सामाजिक स्वरूप सीमित है तथा हम अपने आध्यात्मिक पक्ष को शामिल करके इसका विस्तार कर सकते हैं। अतः, वे विश्वास दिलाते है कि हमारी 'वास्तविक पहचान' इसमें निहित है।

इसलिए, हमारे वास्तविक आत्म एवं पहचान को समझने में दो प्रक्रियाएं निर्णायक भूमिका निभाती हैं। एक '*विवेक*' है, जो कि जैव-मनो-सामाजिक आत्म तथा 'विशुद्ध सचेतन' से उत्पन्न अतींद्रिय आत्म जागरूकता के बीच में है। दूसरा '*वैराग्य*' है जो जैव-मनो-सामाजिक आत्म-भाव से अलग होने की प्रक्रिया है। जब तक हम अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामाजिक जीवन में लिप्त रहते हैं, तब तक हममें जैव-मनो-सामाजिक पहचान को मजबूत करने की प्रवृत्ति बनी रहती है। यह हमें 'विशुद्ध सचेतन' का अनुभव करने में सहायता नहीं करेगा क्योंकि हमे हमेशा जागृत अवस्था के सांसरिक अस्तित्व में मग्न रहते हैं। इसलिए, हमें सक्रिय सामाजिक जीवन से विरक्ति तथा अलग होने का भाव विकसित करने की आवश्यकता होती है। परन्तु, इसे संतृप्ति के कुछ स्तरों तक हमारी आवश्यकताओं के काफी हद तक पूरा किए बिना नहीं किया जा सकता है। इसलिए, प्राचीन आध्यात्मिक गुरूओं ने जीवन की चार अवस्थाओं को प्रस्तावित किया है - ब्रहमचर्य (छात्र जीवन), गृहस्थ (पारिवारिक जीवन), वानप्रस्थ (संसार छोड़ना) तथा सन्यास (मुक्ति)। जैसाकि पहली दो अवस्थाओं में हम अपनी जैव-मनो-सामाजिक आत्म एवं पहचान विकसित करते हैं, अंतिम दो अवस्थाओं में हम सचेतन, का अन्वेषण करने

में स्वतंत्र होंगे तथा अपनी वास्तविक पहचान को समझेंगे। लोगों में वैयक्तिक विभिन्नताएं होती हैं और वे इन अवस्थाओं में से कुछ को छोड़ सकते हैं। परन्तु अधिकांश लोगों के लिए विकास की यह अनुक्रम प्रस्तावित किया गया है।

8.6 भारतीय परिवार एवं संस्कृति के संबंध में आत्म की संप्रत्यय

अब हमें भारतीय परिवार एवं संस्कृति के संबंध में आत्म की संप्रत्यय का अन्वेषण करना है। इस संदर्भ में, अनेक संस्कृतियों के मनोवैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन किया जा चुका है। अंतर-सांस्कृतिक (cross-cultural) मनोवैज्ञानिक वे हैं जो आधुनिक मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों तथा सिद्धांतों की प्रासंगिकता एवं प्रायोगिकता में अभिरूचि रखते हैं जिसे पहले पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने विकसित किया था। अपने शोध के क्रम में, उन्होंने धीरे-धीरे महसूस किया कि मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों, सिंद्धातों, नियमों तथा नीतियों को सर्वव्यापी बनाने में अनेक सीमाएं हैं। उन्होंने अनेक आयामों में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विभिन्नताएं पाई। उनमें से आत्म एवं पहचान प्रमुख हैं। सांस्कृतिक तुलनाओं में यह पाया गया कि पाश्चात्य एवं गैर-पाश्चात्य, विशेष रूप में एशियाई अपने बारे में चारित्रिक रूप से भिन्न प्रकार से सोचते हैं। उन विभिन्नताओं को विशिष्ट संरचनाओं जैसे ''व्यक्तिवाद'' एवं ''समूहवाद'' (हॉफस्टेड, 1980) ''स्वतंत्रता'' तथा ''परस्पर-निर्भरता'' (मार्कस एंड किटयामा, 1991) तथा ''सापेक्ष आत्म'' (हो 1993, मसकोली, मिश्रा एंड रैपिसर्डी, 2004) के रूप में वर्णित किया गया है।

इन अध्ययनों पर आधारित कुछ सामान्यीकरण निकाले गए कि पाश्चात्य लोगों में इस बारे में अधिक व्यक्तित्ववाद, स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता होती है कि वे अपने आत्म एवं पहचान के बारे में कैसे एवं क्या सोचते हैं। एशियाई लोगों में सामूहिक, परस्पर-निर्भरता तथा उनकी आत्म-व्याख्या में सापेक्षिक रुझान की प्रवषति पाई जाती है। हालांकि, हाल के अनुसंधानकर्त्ता प्रस्तुत करते हैं कि इस प्रकार की विभिन्नताएं एक समाज के अंतर्गत भी हो सकती हैं तथा ये अंतर संपूर्ण नहीं हैं। आगे चलकर अंतर-सांस्कृतिक अध्ययनों में यह भी प्रदर्शित किया गया कि विभिन्न समय एवं स्थान की परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए एक ही व्यक्ति भी अपने बारे में दोनों प्रकार से सोच सकता है। आत्म परिकल्पना का यह द्वि अर्थी तरीका और उन्हें अमेरिकी एवं भारतीय संबद्ध (मैस्कोली, मिश्रा एंड रैपिसर्डी, 2004) तथा पूर्व एवं पश्चिम (विग्नोलस, एवं सहयोगी, 2016) का भेद के साथ संबंधित करना तर्क संगत नहीं है।

जब हम विचार करते हैं कि आत्म एवं पहचान भारतीय संदर्भ में किस प्रकार से विकसित हुई हैं तब हम अनेक अनुसंधानकत्ताओं से सहमत हो सकते हैं कि हम मुख्य रूप से एक समूह या सामुहिक रुझान के द्वारा दिशा निर्देशित हुए है। जाति, समुदाय, धर्म, भाषा, तथा परिवार वंशावली हमारी पहचान संरचना में सतत रूप से प्रबल भूमिका निभा रहे हैं, यद्यपि पाश्चात्यकरण एवं वैश्वीकरण के प्रभाव के अंतर्गत वर्तमान पीढ़ी में हम व्यक्तित्ववाद की तरफ अधिक रूझान देख रहे हैं। प्रबल सामूहिक रुझान के कारण हम 'अपनी तुलना में 'अन्य' तथा समाज के बारे में अधिक सोचते हैं। दूसरे शब्दों में, हमारी आत्म-संप्रत्यय व्यक्तिगत विशेषताओं के बजाय सामाजिक एवं भूमिका पहचान के तत्व के द्वारा अधिक प्रबलित होती है।

ओयसरमैन, एल्मर एंड स्मिथ (2012) लिखते हैं कि एक ही व्यक्ति के आत्म में 'में' तथा 'हम' पहलू हो सकते हैं। 'मैं' पहलू पर ध्यान देने से यह 'आत्म के व्यक्तित्ववादी भाव (individualistic sense of self) की तरफ जाता है' जो लोगों को उनके बारे में एक सोचने की तरफ ले जाता है कि ''किस प्रकार से यह व्यक्ति अन्य लोगों से अलग एवं भिन्न है''।

दूसरी तरफ 'हम पहलू'' लोगों को यह सोचने की तरफ ले जाएगा कि ''किस प्रकार से वे समान है तथा संबंधों के द्वारा जुड़े हुए हैं'' जिसे कभी-कभी ''सामूहिकत्व दृष्टिकोण'' (collectivistic perspective) कहा जाता है।

मैसकोलो, मिश्रा एंड रेपिसर्डी (2004) ने अमेरिकन और भारतीय के नमूने के अपने तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि संबंधों में अपने आत्म को संरचित करने के चार तरीके हो सकते है - स्वतंत्र (*independent*), पारस्परिक-निर्भरता (*interdependent*), संबंधित (*relational*) तथा व्यापक (*encompassing*)। उन्होंने पाया कि भारतीय प्रतिभागियों ने अमेरिकन प्रतिभागियों की तुलना में आत्म के वर्णन में अधिक संबंधपरकता तथा व्यापकता की सूचना दी। संबंधपरक आत्म स्वयं को संरचित करने का ऐसा तरीका है जिसमें मैं और अन्य को पूर्णरूप से अलग के रूप में नहीं देखा जाता है, यद्यपि इसमें दो या अधिक लोग शामिल होते है।'' इस विचार से, यद्यपि आत्म एक दूसरे से विशिष्ट है, परंतु वे एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं कृ आत्म और अन्य एक दूसरे के संदर्भ के साथ कार्य करते है, इनमें से कोई भी दूसरे से स्वतंत्र नहीं है।'' (पृ. 23-24)। उनके अनुसार ''व्यापकता आत्म के भाव को अन्य में शामिल करने से संबंधित है या संबंध में ऐसे समाविष्ट होना है जो आत्म के परे विस्तार करता है।'' (पृ. 24)। इस प्रकार की आत्म भावना ''संबंधों में उत्पन्न होती है जिसमें एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति की देखभाल के लिए स्वयं को बाध्य या जिम्मेदार के रूप में देखता है।'' (पी. 24)।

लेखक पाते हैं कि आत्म अनुभव के व्यापकता का भाव पदानुक्रमिक संबंधों में बहुलता से मिलने की संभावना होता है, जैसा कि भारत में माता-पिता एवं बच्चे, उच्च कर्मचारी निम्न कर्मचारी तथा पति-पत्नी (यहाँ तक कि भाई बहनों) के संबंधों में पाया जाता है। इस प्रकार के संबंधों में कोई व्यक्ति निश्क्रिय नहीं होता है। उच्च-स्तर एवं निम्न स्तर दोनों का एक दूसरे के प्रति नैतिक कर्त्तव्य होता है, यहाँ तक कि यदि वे कर्त्तव्य पदानुक्रमिक विशमता दर्षाते हैं। पिता, माता, उच्च अधिकारी या भाई क्रमानुसार एक बच्चे, सहयोगी या बहन, भाई की सुरक्षा करने के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं। बदले में, वे लोग अपने बड़ों के द्वारा दिए गए बलिदान एवं देखभाल के लिए उनकी प्रशंसा करना, सक्रिय रूप से सम्मान देना, आज्ञा मानना आदि प्रदर्शित करते हैं। इसे वे धर्म के रूप में मानते हैं। हालांकि, आत्म का एक व्यापक भाव आत्म एवं अन्य के बीच आवश्यक रूप से सीमाओं के धुंधलोपन का संकेत नहीं देता है। संबंधों से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होता है कि उससे क्या अपेक्षा की जाती है जिसे कर्त्तव्य के रूप में जाना जाता है।

इस प्रकार, भारतीय संदर्भ में आत्म एवं पहचान के विकास में धर्म एवं कर्त्तव्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवन की चार अवस्थाएं हैं जिन्हें आश्रम कहते हैं तथा इसमें धर्म एवं कर्त्तव्य अंर्तनिहित है। ब्रहमचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासी, सबका अपना धर्म एवं कर्त्तव्य है तथा जो आत्म-प्रस्तुतीकरण का एक हिस्सा बन जाता है।

स्व आकलन प्रश्न 3

1) एक साधारण व्यक्ति की पहचान आध्यात्मिक पहलुओं से विशेषित होती है। (सही/गलत)।

2) जीवन की चार अवस्थाएं ....., ..., ... और हैं।

3) पाश्चात्य लोगों की तुलना में एशियाई लोगों में अधिक पारस्परिक निर्भरता एवं समूहवाद की प्रवृत्ति पायी जाती है (सही/गलत)।

8.7 सारांश

आधुनिक मनोविज्ञान एवं भारतीय मनोविज्ञान में आत्म एवं पहचान की संप्रत्यय के बीच के अंतर को निम्नानुसार संक्षिप्त में व्यक्त किया जा सकता है। आधुनिक मनोविज्ञान मानव अनुभवों की एक संकीर्ण श्रृंखला को वास्तविक के रूप में पुष्टि करता है तथा एक विस्तृत आयाम को अवास्तविक के रूप में नकारता है। अतः आधुनिक मनोविज्ञान की अधिकांश संप्रत्ययों जाागष्त अवस्था के साथ है तथा कुछ हद तक स्वप्न के साथ हैं। दूसरा, जबकि इन अवस्थाओं में हमारा अनुभव जैव-मनो-सामाजिक है, हाल के ही आत्म एवं पहचान मनोवैज्ञानिक सिद्धांत केवल इन्हीं अवस्थाओं से संबंधित है। इसकी तुलना में, भारतीय मनोविज्ञान में न केवल जागृत अवस्था, स्वप्न एवं गहन निंद्रा की पहचान की गई है बल्कि अन्य प्रकार की मानव संभावनाएं जैसे असाधारण, रहस्यमय तथा आध्यात्मिक भी मान्य है। जैसा कि विशुद्ध सचेतन (pure consciousness) का अनुभव करने की संभावना सही मानी गई है, अतः अतीन्द्रिय आत्म (transcendental self) के सिद्धांत की भी पुष्टि की गई हैं।

इसी प्रकार, भारतीय मनोविज्ञान कर्ता-कर्म/आत्म-अन्य को शामिल करते हुए सभी मानव अनुभवों के विरोधाभास को प्रासंगिक रूप से वास्तविकता के रूप में घोषित करता है तथा ''आधारभूत जागरूकता'' के पृष्ठभूमि में केवल ''आकृतियां'' हैं जो केवल वास्तविक आत्म है तथा षेश आत्म-विहीन के रूप में हैं। अतः उनके लिए जीव (आत्मा) या देहिन (शरीर का स्वामी) भी आत्म विहीन है तथा यह आत्म के रूप में आत्म-विहीन को बताने की एक गलत समझ है। इसे अज्ञान कहते हैं (अतींद्रिय आत्म-ज्ञान की कमी) तथा जो आत्मन के बजाय आत्म-विहीन-जीव देहिन के साथ गलत पहचान की तरफ ले जाता है जो कि मानव की समस्याओं एवं दुःखों का मूल है (सैलगामे, 2005)।

अतः मानव के कश्टों का समाधान, सर्वप्रथम आत्म-विहीन एवं आत्म के बीच अंतर की सही समझ प्राप्त करने में निहित है जिसे विवेक कहते हैं जो श्रवण-ऋषियों के द्वारा कहे गए वचन (आधुनिक समय में सूचनाओं को अर्जित करने के अन्य साधन हैं) तथा चिंतन (मनन) द्वारा प्राप्त होता है। तत्पश्चात् ध्यान (निधिध्यासन) की प्रक्रिया के द्वारा गलत पहचान को विजित करने का सचेतन प्रयास करता है। तब एक व्यक्ति ज्ञानी हो जाता है। अतः, ऋषियों के अनुसार आत्म एवं पहचान को समझने में दो प्रक्रियाएं एक निर्णायक भूमिका निभाती हैं। जिसमें पहला विवेक (विभेदन, discrimination) है एवं दूसरा वैराग्य है जिसे अनासक्ति कहते हैं। यह भारतीय तरीका है।

8.8 प्रमुख शब्द

आत्म : व्यक्ति की स्वयं के बारे में भावना, चिंतन तथा प्रतिबिंबन से संबंधित है।

पहचान : आत्म संप्रत्यय के कुछ पहलू या भाग का भाव निकालने के एक तरीके के रूप में संकल्पना की गई है।

आत्म-संप्रत्यय : संज्ञानात्मक संरचनाएं हैं जिनमें विषयवस्तु, अभिवृतियां तथा मूल्यांकनात्मक निर्णय शामिल हैं।

पुरूष (purusha) : व्यक्ति के बारे में लिंग तटस्थ भाव रूप में संबंधित है तथा वैयक्तिक आत्म या आत्मा का संकेत देता है।

तुरीय : जागरूकता के ''आधार'' (ground) से संबंधित तथा ''विशुद्ध सचेतन'' को सूचित करता है।

अंहकार : ''मैं कर्ता हूँ'' की भावना को परिभाषित करता है।

संबंधपरक आत्म : स्वयं को संरचित करने के एक तरीके से संबंधित है जिसमें मैं तथा अन्य को पूर्ण रूप से अलग के रूप में नहीं बताया गया है यद्यपि इसमें दो या दो से अधिक लोग शामिल होते हैं।

8.9 स्व आकलन प्रश्नों के उत्तर

स्व आकलन प्रश्न 1

1) मनोवैज्ञानिक आत्म शब्द को भावना, चिंतन एवं प्रतिबिंबन के रूप में वर्णित करते हैं।

2) तीन प्रकार की पहचान है - व्यक्तिगत, सामाजिक तथा भूमिका पहचान।

3) आत्म-संप्रत्यय का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है, ''जब व्यक्ति स्वयं के बारे में सोचता है तो उसके दिमाग में जो कुछ आता है, व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में उसका सिद्धांत तथा व्यक्ति जो विश्वास करता है, वह उसके बारे में सही होता है।'' (ओयसरमैन, एल्मर एंड स्मिथ, 2012, पृ. 69)।

स्व आकलन प्रश्न-2

1) 'देह' शरीर से संबंधित है जो मृत्यु के पश्चात् एक निर्जीव सत्ता के रूप में समझा जाता है जबकि यह विश्वास किया जाता है कि 'जीव' मृत्यु के पश्चात् भी अपनी यात्रा जारी रखता है।

2) 'जीव' को एक आनुभविक सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया जिसे तीनों अवस्थाओं जागृत, स्वप्न एवं सुशुप्ति तथा एक जन्म के पश्चात् अगले जन्म के अनुभवों से गुजरना पड़ता है। आत्मन् को एक अंतरतम तत्व के रूप में समझा जाता है जो कि सभी लोगों के लिए समान है। यह आध्यात्मिक मूल है तथा यह ब्रहम् के समान है जिसे उपनिषदों में ब्रहमांड का मौलिक सिद्धांत माना है।

3) *अहंकार* शब्द संस्कृत भाषा के *अहम्* शब्द से लिया गया है जो अंग्रेजी भाषा के *मुझे* (*me*) शब्द के समान है। अद्वैत वेदांत में, यह भावना कि अहम् कर्त्ता ''मैं कर्त्ता हूं'' को अहंकार के रूप में परिभाषित किया गया है। कर्त्ता की यह भावना या ''अभिकर्त्तव्य का भाव'' जिसे अंहकार का एक प्रमुख लक्षण समझा जाता है।

स्व आकलन प्रश्न 3

1) गलत

2) जीवन की चार अवस्थाएं - ब्रहमचर्य (विद्यार्थी जीवन), गृहस्थ (घर का उत्तरदायित्व संभालना), वानप्रस्थ (वन में जाना) तथा सन्यास (त्याग)।

3) सही

8.10 इकाई के अंत में प्रश्न

1) आत्म, पहचान तथा आत्म-संप्रत्यय में अंतर स्पष्ट कीजिए।

2) आत्म एवं पहचान की भारतीय संप्रत्यय के वैश्विक दृष्टिकोण का वर्णन कीजिए।

3) आत्म एवं पहचान का वर्णन करने के लिए प्रयोग किए गए आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शब्दों के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

4) व्याख्या करें कि भारत में आत्म एवं पहचान के विकास की संरचना किस प्रकार की गई हैं।

5) आत्म की पाश्चात्य एवं भारतीय संप्रत्ययओं के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

6) आत्मभाव के विकास में भारत में परिवार एवं संस्कृति की भूमिका की व्याख्या करें।

8.11 संदर्भ

Colman, A. M. (2009). *Oxford dictionary of Psychology.* Oxford, UK: Oxford University Press.

Erikson, E. H. (1951). *Childhood and society*. New York: Norton. Erikson, E. H. (1968). *Identity: Youth and crisis*. New York: Norton.

Ho, D. Y. F. (1993). Relational orientation in Asian social psychology. In U. Kim and

J.W. Berry (Eds.) *Indigenous Psychologies: Research and experience in cultural context*. New Delhi: Sage publications.

Hofstede, G. (1980). *Culture's Consequences: international differences in work-related values*. Beverly Hills, Cal.: Sage Publications.

Kim, U. & Berry, J.W. (1993). *Indigenous Psychologies: Research and experience in cultural context*. (Eds.) New Delhi: Sage publications.

Marcus, H., & Kitayama, S. (1991). Culture and the Self: Implications for cognition, emotion, and motivation. *Psychological Review, 98,* 225–253.

Mascolo, F. M., Misra, G., & Rapisardi, C. (2004). Individualand relational conceptions of self in India and the United States. *New directions for Child and Adolescent development, no. 104, Pp. 9-27.*

Oyserman, D., Elmer, K., & Smith, G. (2012). Self, self-concept, and identity. In M.

R. Leary & J. P. Tangney (Eds.). *Handbook of self and identity.* Ch.4. Pp. 69-104.(2nd Edn.). New York: The Guilford Press.

Parikh, V. (2006). *Jainism and the new spirituality.* (2nd Edn.). Toronto, CA: Peace Publications.

Rao, S.K.R. (1960). *Development of psychological thought in India.* Mysore: Kavyalaya Publishers.

Safaya, R. (1975). *Indian psychology: A critical and historical analysis of the psychological speculations in Indian philosophical literature.* Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.

Salagame, K.K.K., Raj, A., Murthy, K. P., Parimala, N., Rekha, K., Gaur, S. (2005).

Concept *Ahamkara*: Theoretical and Empirical Analysis. In K. R. Rao & S. B. Marwaha (Ed.). *Towards a Spiritual Psychology - Essays in Indian Psychology*. New Delhi: Samvad Publications.

Salagame, K.K.K. (2008). Indian thought and traditions: Apsycho-historical perspective. In K.R. Rao, A.C. Paranjpe, & A.K. Dalal (Eds.), *Handbook of Indian Psychology.* New Delhi: Cambridge University Press of India Pvt. Ltd. Pp. -19-52.

Salagame, K.K.K. (2011a). Human identity from the perspective of Hinduism (Sanātanadharma). In *Indian and Christian- Changing Identities in Modern India*. India, Bangalore: SAIACS Press. UK, Oxford: Oxford House Research Ltd.

Salagame, K.K.K., (2011b). Ego and *Ahamkāra*: Self and identity in modern psychology and Indian thought**.** In M. Cornelissen, and G.Misra (Eds.). *Foundations of Indian Psychology: Theories and concepts*. Pearson Education, New Delhi. Pp. 133-145.

Sarvananda, S. (1976). *Mandukya Upanishad*. Madras: Sri Ramakrishna Ashram.

Vignoles, Vivian L., Owe, Ellinor, Becker, Maja, Smith, Peter B., Easterbrook, Matthew J., Brown, Rupert, González, Roberto, Didier, Nicolas, Carrasco, Diego, Cadena, Maria Paz, Lay, Siugmin, Schwartz, Seth J., Des Rosiers, Sabrina E., Villamar, Juan A., Gavreliuc, Alin, Zinkeng, Martina, Kreuzbauer, Robert, Baguma, Peter, Martin, Mariana, Tatarko, Alexander, Herman, Ginette ,de Sauvage, Isabelle ,Courtois, Marie, Garðarsdóttir, Ragna B.,Harb, Charles, Schweiger Gallo, Inge ,Prieto Gil, Paula ,Lorente Clemares, Raquel, Campara, Gabriella ,Nizharadze, George, Macapagal, Ma. Elizabeth J., Jalal, Baland, Bourguignon, David ,Zhang, Jianxin ,Lv, Shaobo, Chybicka, Aneta, Yuki, Masaki, Zhang, Xiao, Espinosa, Agustín ,Valk, Aune, Abuhamdeh, Sami, Amponsah, Benjamin, Özgen, Emre, Güner, E. Ülkü, Yamakoðlu, Nil, Chobthamkit, Phatthanakit, Pyszczynski, Tom, Kesebir, Pelin, Vargas Trujillo, Elvia, Balanta, Paola, Cendales Ayala, Boris, Koller, Silvia H. ,Jaafar, Jas Laile, Gausel, Nicolay, Fischer, Ronald, Milfont, Taciano L., Kusdil, Ersin, Çaðlar, Selinay, Aldhafri, Said, Ferreira, M.Cristina ,Mekonnen, Kassahun Habtamu, Wang, Qian, Fülöp, Márta, Torres, Ana, Camino,Leoncio, Lemos, Flávia Cristina Silveira, Fritsche, Immo, Möller, Bettina, Regalia, Camillo, Manzi, Claudia, Brambilla, Maria, Bond, Michael Harris (2016). Beyond the 'east–west' dichotomy: Global variation in cultural models of selfhood. *Journal of Experimental Psychology: General*, *145(8*), 966-1000.

8.12 अनुशंसित अध्ययन

Kakar, S., & Kakar K. (2009). *The Indians: Portrait of a people.* New Delhi: Penguin Books India.

Kakar, S. (1996). *The Indian psyche – The inner world, Shamans, Mystics & Doctors, Tales of love, Sex and danger.* New Delhi: Oxford University Press.

Paranjpe A.C. (1999). *Self and identity in modern psychology and Indian thought*. New York: Plenum Press.

Paranjpe A. C. (1995). The denial and affirmation of self: The complementary legacies of East and West. *World Psychology*, 1(3): 9-46.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY